पीएफसी बनाए एक अरब मुस्कानों को

# समृद्ध, सशक्त, सक्षम

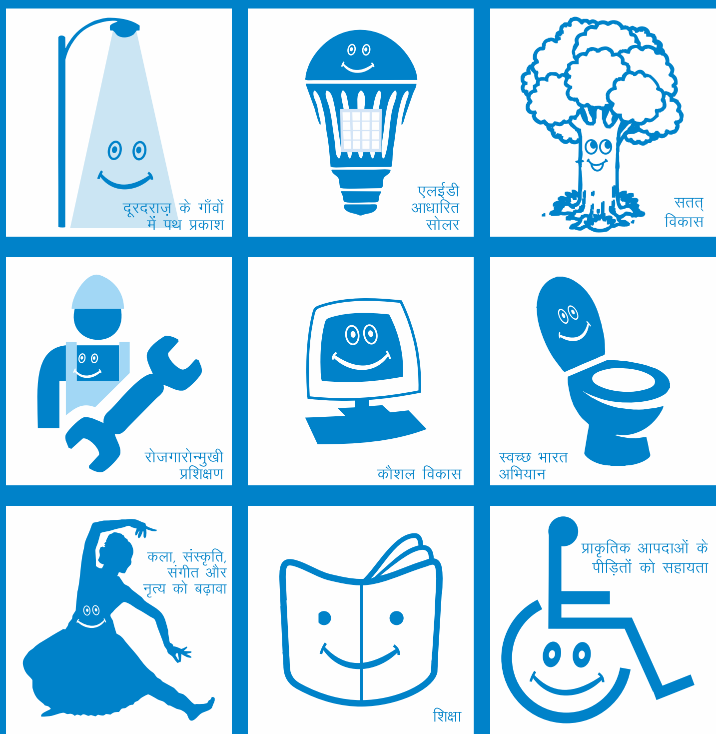


## हमारी ऊर्जा और सहायता लोगों के जीवन को उज्ज्वल और सक्षम बनाती है

समाज में एक रचनात्मक भागीदार के रूप में कार्यरत, पीएफसी निम्नलिखित कार्यों में वित्तीय सहायता के माध्यम से, अपने सामाजिक दायित्व के उद्देश्यों को साकार करने के लिए, ठोस कदम उठा रहा है:

- अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, महिलाओं और ईडब्ल्यूएस तथा शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्तियों के लिए रोजगारोन्मुखी प्रशिक्षण एवं कौशल विकास कार्यक्रमों को सहायता
- सरकारी विद्यालयों, आंगनवाड़ी केन्द्रों, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों आदि में स्वच्छ ऊर्जा समाधान जैसे सोलर लालटेन, सोलर स्ट्रीट लाइट, सोलर पीवी सिस्टम उपलब्ध कराना
- पिछड़े और दूरदराज़ क्षेत्रों में घरेलू प्रकाश प्रणालियों के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करना
- विद्यालयों और पिछड़े जिलों में स्थित गाँवों, जिनमें शौचालय की सुविधा नहीं है, में स्वच्छ भारत स्वच्छ विद्यालय अभियान के तहत शौचालयों का निर्माण
- प्रौढ़ शिक्षा केंद्रों में सुविधाओं का अपग्रेडेशन
- प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित राज्यों को सहायता
- प्रायोजन सहायता के माध्यम से शिक्षा, कला, संस्कृति, संगीत और नृत्य, खेल आदि को बढ़ावा

**पावर फाइनेंस कॉर्पोरेशन लिमिटेड**

(एक नवरत्न पीएसयू)

**पंजीकृत कार्यालय:** "ऊर्जानिधि", 1, बाराखंबा लेन, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली -110001;
फोन : 23456000; फैक्स: 23412545; वेबसाइट: **www.pfcindia.com**

**जीवन को शक्ति, भारत को शक्ति**

# पुस्तक संस्कृति

**साहित्य एवं संस्कृति की त्रैमासिकी**

वर्ष-1; अंक-3; जुलाई-सितंबर, 2016

प्रधान संपादक
**बल्देव भाई शर्मा**

संपादक
**पंकज चतुर्वेदी**

परामर्श
**राजीव रंजन गिरि**

संपादकीय सहयोग
**दीपक कुमार गुप्ता**

विज्ञापन एवं प्रसार
**कुमार समरेश**
**नरेन्द्र कुमार**

उत्पादन
**तरुण दवे, अनुज भारती**

रेखाचित्र
**श्रेया श्रुति**

सज्जा/डिजाइन
**ऋतुराज शर्मा**

शब्द संयोजन/कार्यालयीन सहयोग
**सुभाष चंद्र, प्रवीन कुमार**



सदस्यता शुल्क—
**व्यक्तियों के लिए**
एक प्रति : ₹ 35.00
वार्षिक : ₹ 125.00
(शुल्क भारत के लिए मान्य)

**संपादकीय पत्र व्यवहार**
संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
पता : नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया
फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
फोन : 011-26707761
ई-मेल: editorpustaksanskriti@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक सतीश कुमार द्वारा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत) नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और रेक्मो प्रेस प्रा. लि., ओखला, नई दिल्ली से मुद्रित।

**संपादक : पंकज चतुर्वेदी**



**सर्वाधिकार सुरक्षित :**
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।


## इस अंक में


**संपादकीय** —*बल्देव भाई शर्मा* 2

**पाठकीय प्रतिक्रिया** 3

**आलेख**
मेघदूत के मेघ का मानवीय स्वरूप—*आशीष कुमार* 4
हहराता सावन—*डॉ. आरती स्मित* 8
पावस ऋतु—*डॉ. शशांक शुक्ला* 11

**लघुकथा**
पिताजी की बात अब कोई नहीं सुनता—*राजकुमार गौतम* 15

**कहानी**
बीते दिन—*सीमा 'असीम' सक्सेना* 16
काले मेघा...—*शशिभूषण सिंहल* 21

**लोकरंग**
बुंदेलखंड की माटी कला की लोक परंपरा—*विनोद मिश्र 'सुरमणि'* 25
मरुधरा में पावस और प्रचलित लोकगीत—*सपना मांगलिक* 30

**कविताएँ**
रातें हुई उदास—*संतोष कुमार सिंह* 33
कुंडलियाँ—*त्रिलोक सिंह ठकुरेला* 34
राजस्थानी कविताएँ—*ओम नागर* 35

**विज्ञान**
वर्षा की ऋतु आई—*विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी* 36

**बहस**
पुस्तकें मनुष्य मात्र के लिए बेहतर उपकरण हैं—*डॉ. अमरकांत कुमार* 39

**अनुभव**
शांतिनिकेतन का वर्षा-उत्सव—*जयप्रकाश सिंह बंधु* 44

**साहित्यिक गतिविधियाँ** 46

**भारतीय भाषाओं से**
घर से गली सुरक्षित—*के.के. मीनन* 51
तेलुगु कहानी... अनुवाद : *जी. परमेश्वर*

**पुस्तक समीक्षा** 54

**पुस्तकें मिलीं** 62

**स्मृति**
जगदीश जोशी—*कुसुमलता सिंह* 63

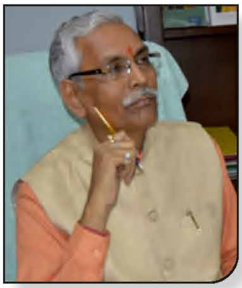

# मेघा पानी दे

निदा फाजली ने बड़ी सार्थक पंक्तियाँ लिखी हैं— 'गरज-बरस प्यासी धरती को फिर पानी दे मौला/चिड़ियों को दाना बच्चों को गुड़धानी दे मौला।' धरती की प्यास मेघ के पानी अर्थात् वर्षा जल के बिना कहाँ बुझती है। बारिश से न केवल धानी चूनर पहनकर धरती लहलहा उठती है, बल्कि धरती का गर्भ भी सिंचित होता है। संत तुलसीदास ने भी श्रीरामचरितमानस में पावस ऋतु का बड़ा मोहक वर्णन करते हुए लिखा है— 'ससि संपन्न सोह महि कैसी/उपकारी कै संपति जैसी।' वर्षा काल में हरी-भरी फसलों से धरा शोभायमान हो उठती है जैसे परोपकारी व्यक्ति की संपत्ति सबके लिए सुखकारी होती है। कवि बंकिम चंद्र चटर्जी ने भारत माता की वंदना करते हुए इसे ही 'शस्यश्यामलाम् मातरम्' कहा है।

मेघ न बरसें तो धरती की कोख सूनी रह जाती है, अन्न न उपजे तो न चिड़ियों को दाना मिल पाता है और न बच्चों को गुड़धानी। हालाँकि पिज्जा, नूडल्स के इस दौर में बहुत से बच्चे तो गुड़धानी का अर्थ भी नहीं समझते होंगे। वर्षा न हो तो चारों ओर अकाल की मार और भूख से हाहाकार। जीव-जंतु, पशु-पक्षी, मनुष्य सब बेहाल हो जाते हैं। भूमंडल पर जल का सबसे बड़ा स्रोत तो वर्षा ही है। भारत का लोक साहित्य वर्षा-गान से भरा पड़ा है। लोक कवि घाघ और भड्डरी की कहावतें वर्षा के विज्ञान को इतनी तार्किकता के साथ उकेरती हैं कि आज का मौसम विज्ञान भी उनके सामने बौना नजर आता है। ये भारतवर्ष की समृद्ध साहित्य-विज्ञान परंपरा की द्योतक हैं।

श्रीरामचरितमानस तो मानो भारतीय लोक साहित्य का उत्स है। तुलसी बाबा ने पावस ऋतु का जो वितान रचा है उसमें वर्षा की मोहकता से उन्मत्त प्रकृति का नृत्य-गान तो है ही, मनुष्य की गति-मति की तुलना भी वर्षा के विविध रूपों से की है— 'बरसहिं जलद भूमि निअराएँ/जथा नवहिं बुध विद्या पाएँ।' धरती के निकट (नीचे) आकर बादल बरस रहे हैं, जैसे विद्वान विद्या पाकर विनम्र हो जाते हैं। इसी क्रम में तुलसीदास लिखते हैं— 'समिटि-समिटि जल भरहिं तलाबा/जिमि सदगुन सज्जन पहिं आबा।' अर्थात् वर्षा जल इकट्ठा होकर तालाबों में उसी तरह भर जाता है जैसे सज्जन लोगों के जीवन में सद्गुणों का भंडार भर जाता है। बारिश का जल जब छोटी नदियों में भर-भरकर बहने लगता है, तो इसका तुलसी ने कैसा सुंदर रूपक बाँधा है— 'छुद्र नदी भरि चलीं तोराहीं'/जस थोरे धन खल इतराहीं।' जैसे छोटी नदी में वर्षा का पानी आ जाने से वह किनारे तोड़कर बहने लगती है, वैसे ही थोड़ा-सा धन (या अन्य कोई सामर्थ्य) पाकर दुष्ट (दुर्बुद्धि) लोग बौरा जाते हैं यानी इतराने लगते हैं।

इस तरह भारतीय लोकमानस में वर्षा केवल जलवायु परिवर्तन का एक क्रम या मानसूनी प्रक्रिया भर नहीं है, वह जीव-जगत का प्राण है। वह अनेक तरह से मानवीय संवेदनाओं को आलोड़ित करती है। सीता की खोज में वन-वन भटकते राम जब बरसने के लिए आतुर मेघों का गर्जन सुनते हैं तो लक्ष्मण से कह उठते हैं— 'घन घमंड गरजत नभ घोरा/प्रिया हीन तरपत मन मोरा।' भारत के लोक साहित्य में कैसा विरोधाभासी तिलिस्म रचा गया है, पानी तो आग को शांत करता है लेकिन वर्षा विरह की ज्वाला को और भड़का देती है। महाकवि कालिदास ने 'मेघदूतम्' में यक्ष के विरह में तड़पती यक्षिणी का जो वर्णन किया है, वह अद्भुत है। श्रावण मास तो वर्षा का प्राणबिंदु है, शिव की साधना का पर्व। शिव का कल्याणकारी रूप वर्षा में समाहित है जो जीवन को खुशहाल बना देता है और सावन चारों ओर प्राकृतिक हरीतिमा की छटा बिखेरकर इस खुशहाली किंवा मन के आनंद को द्विगुणित कर देता है।

वर्षा काल भारत की संत परंपरा के लिए चातुर्मास के रूप में चिंतन का पर्व बन जाता है। जैन मुनि हों या वैष्णव संत इस चातुर्मास में एक ही स्थान पर ठहरकर अपनी तप और ज्ञान-साधना का निरंतर परिमार्जन करते हैं। भारत में ऐसा बहुआयामी स्वरूप है पावस ऋतु का जो साहित्य, साधना और जीवन के आनंद के विविध छोरों से जुड़ा है। भारत ऋषि और कृषि संस्कृति का देश है, पावस काल दोनों को ही जीवंत बनाता है।

इस सबके बावजूद यह विडंबना ही है कि आज भौतिक लिप्साओं के दौर में प्रकृति पर पड़ती मार ने पर्यावरण संतुलन इस कदर बिगाड़ दिया है कि कई बार तो वर्षा की एक बूँद के लिए भी चातक की चाह तड़प-तड़पकर दम तोड़ देती है। तालाब, नदी सब सूख रहे हैं, यहाँ तक कि उन पर अतिक्रमण कर अट्टालिका निर्माण किए जाने के बीच उनका अस्तित्व ही खो रहा है। धरती के गर्भ में जल नीचे और नीचे होता जा रहा है। दूसरी ओर कहीं वर्षा बाढ़ के रूप में विकराल रूप लेकर आ रही है। कभी-कभी डर लगता है कि मनुष्य का संयम नहीं लौटा तो वर्षा का मनोहारी रूप कहीं साहित्य के पृष्ठों में ही सिमट कर न रह जाए। अतः इस साहित्य से प्रेरणा लेकर हम जागें और अपनी भौतिक लालसाओं की दौड़ थाम कर पर्यावरण संरक्षण की चिंता करें तथा मेघों को वह पर्यावरणीय परिवेश दें जहाँ वे जमकर बरसें और तालाब-नदी सब लबालब भरे रहें। आज भूगर्भीय जल का स्तर लगातार गिरते जाने की चिंता से उबरने के लिए वर्षा जल का संचय भी आवश्यक है। देश में तालाबों की पुरातन परंपरा हमें इसकी याद दिलाती है। प्रख्यात पर्यावरणविद् श्री अनुपम मिश्र की अमर कृति 'आज भी खरे हैं तालाब' न केवल इसकी ताकीद करती है बल्कि आगे की राह भी दिखाती है। पानी मनुष्य, पशु-पक्षी और प्रकृति की पहली आवश्यकता है, इसीलिए रहीम ने कहा है— 'रहिमन पानी राखिए बिनु पानी सब सून/पानी गए न ऊबरें मोती, मानुष, चून।'

**(बल्देव भाई शर्मा)**

*प्रधान संपादक, पुस्तक संस्कृति*

'पुस्तक संस्कृति' का अप्रैल-जून, 2016 अंक मिला। नेशनल बुक ट्रस्ट जैसे स्तरीय संस्थान से ऐसी ही स्तरीय पत्रिका की अपेक्षा थी। बल्देव भाई शर्मा जी के संपादकीय ने भारतीय साहित्य संपदा के महत्त्व को पुनर्प्रकाशित किया है। खासकर पंचतंत्र की वैश्विक लोकप्रियता के बारे में जानना भारतीयता के गौरव का विस्तार है। इसके लिए साधुवाद। पद्मश्री विद्यानिवास मिश्र जी का ललित निबंध, पाणिग्रही जी का बस्तर की लोक संस्कृति को रेखांकित करता आलेख, सूर्यनाथ सिंह व लक्ष्मी पांडेय की कहानी, रंजना जायसवाल का उपन्यास अंश, गोपाल छोटेराय का उड़िया नाटक, बलराम व राजेन्द्र उपाध्याय का आलेख सभी कुछ रोचक व उपयोगी सामग्री से भरा-पूरा, आकर्षक कलेवर और सुरुचिपूर्ण संपादकीय से सजा अंक पढ़कर मन प्रसन्न हो गया।

**–डॉ. मीनाक्षी स्वामी**
इंदौर (म.प्र.)

'पुस्तक संस्कृति' के माध्यम से आपके एवं सहयोगियों के संपादन कौशल से परिचय हुआ। पूत के पाँव पालने में दिखे। यदि पहला या दूसरा अंक इतना उत्कृष्ट एवं सुंदर समायोजित है तो भविष्य का साफ-साफ आकलन किया जा सकता है। पत्रिका का शीर्षक अच्छा लगा। विराटता झलकती दिखी। पूरी सामग्री चुनिंदा एवं पठनीय है, इसलिए साहित्य जगत में पैठ बनने में समय नहीं लगेगा। अंक प्रारंभ से अंत तक आकर्षक है। अंक युवा एवं वरिष्ठों के बीच सेतु का कार्य करेगा। प्रारंभ में वार्षिक सदस्यता रखी, यह अच्छा किया। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के निर्णय के स्वागत के साथ हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ।

**–सदाशिव कौतुक**
प्रबंध संपादक 'समावर्तन',
इंदौर (म.प्र.)

पत्रिका का नाम देखकर खुशी हुई कि आप इस देश में प्रकाशित हो रही पुस्तकों के जंगल में से कुछ अच्छी पुस्तकों की जानकारी देंगे, जिसकी अत्यावश्यकता है। वहीं आलेख, कहानी, यात्रा वृत्तांत, लघुकथा, कविता, उपन्यास अंश, संस्मरण आदि इस पत्रिका में भी छपे हैं। कृपया बदलाव की सोचें, जिसकी आवश्यकता है।

**–ब्रज बिहारी कुमार**
संपादक, चिंतन-सृजन एवं डायलॉग,
दिल्ली

'पुस्तक संस्कृति' के रूप में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा अपनी पत्रिका का प्रकाशन आरंभ करना सराहनीय और अभिनंदनीय पहल है। उम्मीद है कि यह पहल आगे एक सतत् रचनात्मक सिलसिले के रूप में विकसित होगी। पत्रिका के प्रवेशांक के संपादकीय में बल्देव भाई ने भारतीय ज्ञान और विचार संपदा की दुहाई देकर साहित्य और पुस्तकों की भूमिका के महत्त्व पर जरूरी रोशनी डाली है। भारत का प्रकाशन क्षेत्र दुनिया में तीसरे नंबर पर है। पर पुस्तकों के प्रकाशन से आगे उसकी मौलिकता और वैश्विक हलचल के केंद्र में आने की उसकी क्षमता पर आज कहीं न कहीं सवाल खड़े हो रहे हैं। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास जिस जिम्मेदारी और लक्ष्य को पूरा करने वाली शीर्ष संस्था है, उसमें यह जरूरी है कि भारतीय साहित्य और पुस्तकों को लेकर देश और देश से बाहर एक अपेक्षित और अनुकूल माहौल बने। यह पत्रिका इस काम को करने का एक बेहतर माध्यम हो सकता है। अपने प्रथम संपादकीय में बल्देव भाई ने भी कहीं न कहीं इस ओर इशारा किया है कि 'पुस्तक संस्कृति' द्वारा वे देश के प्रकाशन क्षेत्र व रचना संसार को एक सार्थक और सकारात्मक अभिव्यक्ति देना चाहते हैं। पत्रिका की भविष्य की सार्थकता और सफलता के लिए अक्षर शुभकामनाएँ।

**–विनीता प्रकाश**
एन्वायोरोटेक सिस्टम्स प्रा.लि.
सेक्टर-51, नोएडा

बदले हुए सामाजिक परिदृश्य में चुनौतियाँ अनेक हैं, विशेषतया प्रकाशन जगत को लेकर। लेखक से पैसा लेकर पुस्तक प्रकाशित करने का प्रचलन इधर कुछ अधिक बढ़ गया है। इस स्थिति में पुस्तक की गुणवत्ता किनारे कर दी जाती है। वस्तुतः पाठकों की रुचियों को आघात पहुँचता है। इस पर लागत मूल्य में कई गुणा ऊँचे दाम भी पाठकों को हतोत्साहित करते हैं। सरकारी थोक खरीद भी पाठकों से पुस्तक को दूर ले जाती है। 'पुस्तक संस्कृति' केवल अनुवाद या पुस्तक समीक्षा अथवा कविता, कहानी की पत्रिका होकर न रह जाए, क्योंकि ऐसी कई पत्रिकाएँ पहले से ही पाठकों को उपलब्ध हैं। कालजयी रचनाओं पर बातचीत, पुरस्कृत रचनाओं की पृष्ठभूमि, अनेक लेखकों के रचनात्मक अनुभव, कुछ लोकप्रिय लेखकों की रचनाओं का पुनर्मुद्रण आदि भी इसमें शामिल किया जा सकता है। यदि संभव हो तो पत्रिका की प्रकाशन अवधि त्रैमासिक से मासिक की जाए तो पाठकों को अपनी स्मरण शक्ति पर अधिक दबाव नहीं डालना पड़ेगा। निजी क्षेत्र के प्रकाशकों के अनुभवों का आदान-प्रदान भी इस संस्कृति का एक हिस्सा हो सकता है।

**–केवल गोस्वामी**
सरिता विहार, नई दिल्ली

## आपकी राय का स्वागत है

'पुस्तक संस्कृति' पत्रिका में प्रकाशित सामग्री पर आपके सुझाव, राय का सदैव स्वागत है। देश-दुनिया के साहित्यिक-सांस्कृतिक परिवेश, प्रकाशन जगत की गतिविधियों पर आपकी सम्मति के लिए इस स्थान पर आपके पत्र/ईमेल की प्रतीक्षा है।

संपादक, पुस्तक संस्कृति, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन, 5, इंस्टीट्यूशनल एरिया फेज-2, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
संपर्क : 267-07758/07876/07700
ईमेल : editorpustaksanskriti@gmail.com

# मेघदूत के मेघ का मानवीय स्वरूप

संस्कृत साहित्य के गीति काव्यों में मेघदूत का स्थान सर्वप्रथम है। यह कालिदास की परिपक्व कला, कल्पना की ऊँची उड़ान तथा उत्कृष्ट भाषा शैली का परिचायक ग्रंथ है। यह मंदाक्रांता छंद में लिखा हुआ लगभग 125 पद्यों का एक छोटा-सा गीतिकाव्य है, जो दो भागों में विभक्त है—पूर्वमेघ और उत्तरमेघ।

**आशीष कुमार**

संस्कृत में परास्नातक एवं पीएच.डी. के लिए शोध कार्य। पाँच शोध पत्र प्रकाशित। 'फेसबुकस्य अनारकली' संस्कृत एकांकी प्रकाशनाधीन।

**संप्रति :**

राजधानी महाविद्यालय, नई दिल्ली में संस्कृत के सहायक आचार्य।

**संपर्क :**

asheeshkumar91@gmail.com


इसके अंतर्गत अपनी प्रेमिका के प्रति अतिशय प्रेम करने वाला एक यक्ष अपने कर्तव्य में आलस्य कर बैठता है, जिसके परिणामस्वरूप उसे यक्षेश्वर कुबेर के द्वारा शाप दे दिया जाता है। इसी शाप की पूर्ति हेतु उसे अलकापुरी से निकलकर एक वर्ष के लिए पृथिवीलोक पर अपना डेरा डालना पड़ता है। वह विंध्याचल में रामगिरि पर बने आश्रमों में रहना प्रारंभ कर देता है। अपनी प्रियतमा से दूर हुआ वह किसी प्रकार शाप की अवस्था के आठ मास तो जैसे-तैसे बिता लेता है, परंतु एक दिन उसे आषाढ़ मास के आरंभ में पहाड़ की चोटी पर उमड़ा हुआ बादल दिखाई देता है, उसी क्षण उसका हृदय भर आता है।

कालिदास के अनुसार मेघ के दिखने पर तो सुखी मनुष्य का भी चित्त विचलित हो जाता है, फिर गले मिलने की अभिलाषा वाले व्यक्ति के दूर स्थित होने पर तो कहना ही क्या[1]? मेघदूत का यक्ष भी अपनी प्रियतमा से गले मिलने के लिए अत्यंत व्याकुल है, साथ ही वह काम का मारा हुआ है। कालिदास के अनुसार काम से पीड़ित हुआ व्यक्ति जड़-चेतन पदार्थों के प्रति स्वभाव से ही दीन अर्थात् विवेकशून्य हो जाया करता है[2]।

यही कारण है कि कालिदास का यक्ष भी काम से पीड़ित हुआ सजीव और निर्जीव में भेद कर पाने में अक्षम है। वह अपनी प्रेमिका के वियोग में तड़पता हुआ, जब आषाढ़ मास के प्रथम मेघ को देखता है तो उसी में मानवीय स्वरूप देखता हुआ अपने हृदय की बात उसे कह देता है। यद्यपि कालिदास ने मेघ का निर्माण चार तत्त्वों—धुआँ, ज्योति (अग्नि), जल तथा वायु से मिलकर बताया है[3], जो कि कालिदास के भौतिक विज्ञान और रासायनिक विज्ञान से परिचय को बतलाता है। परंतु मेघदूत के यक्ष के लिए तो वह मेघ उसका मित्र है, जो अब उसके संदेश को उसकी भार्या तक पहुँचाएगा।

मेघदूत के अनुसार वर्षा ऋतु के प्रारंभ में पवन से प्रेरित हुआ मेघ आकाश में उड़ने लगता है। पपीहा मधुर स्वर में गान करता है। आकाश में वलाकाएँ पंक्तिबद्ध हो उड़ती हैं, क्योंकि ये उनके गर्भाधान का समय है[4]। यक्ष का संदेशवाहक मेघ भी आकाश मार्ग से उड़ता हुआ अलकापुरी की ओर अग्रसर है। मेघ के अनुकूल हुआ वायु उसे धीरे-धीरे आगे बढ़ा रहा है। वर्षा के आगमन से परिचित हुआ चातक पक्षी बोलने लगता है, साथ ही आकाश मार्ग से पंक्तिबद्ध होकर जाते हुए बगुलियों के आगे-पीछे राजहंस भी अपने मुख में पाथेय के रूप में कमल-नाल के अग्रभाग के टुकड़ों को दबाए हुए मानसरोवर को प्रस्थान कर रहे हैं। इस प्रकार वे यक्ष के संदेशवाहक मेघ के साथी बनकर हिमालय की ओर जा रहे हैं। अलकापुरी और मानसरोवर की स्थिति हिमालय पर्वत पर ही बताई गई है, इसलिए दोनों मार्ग के सहयात्री बन गए हैं[5]। मार्ग में सहयात्री की आवश्यकता मनुष्य को होती है। परंतु यहाँ मेघ में मानवीय स्वरूप स्वीकारने के कारण उसे भी सहयात्री की आवश्यकता दिखलाई गई है।

मेघदूत के अंतर्गत वर्षा काल के प्रारंभ में हरे और धूसर रंग वाले, जिनमें अभी आधे ही केसर निकल पाए हैं, ऐसे कदंब के वृक्ष

सुशोभित हो रहे हैं। एक तरफ हरे कदली वृक्ष खड़े हुए हैं, जिनमें अभी प्रथम बार ही कलियाँ निकली हैं। प्रथम वर्षा के जल को प्राप्त करने से उच्छवसित भूमि सुगंध छोड़ रही है। फूलों पर भौंरे गुंजायमान हैं। जंगल में हिरण चौकड़ी भर रहे हैं, तथा हाथी दलदल में प्रकट हुई पहली-पहली कलियों वाली कंदलियों (भुँइकेलियों) को खाकर प्रसन्न हो रहे हैं[6]। हाथी सुगंधप्रिय होते हैं। बारिश की बूँदें पड़ने से संतप्त पृथिवी से जो वाष्प निकलती है, वह सुगंधित होती है। यह वाष्प वायु से मिलने पर वायु को भी सुगंधित कर देती है। इसी सुगंधित वायु का हाथी अपनी सूँड़ से पान करते हैं, जिससे उनके नाक के छिद्रों से एक ध्वनि निकलती है। वर्षाकालीन यह शीतल वायु जंगली गूलरों को पकाने वाला होता है। यक्ष के अनुसार ऐसा यह शीतल वायु देवगिरि को जाना चाहते हुए तेरे अर्थात् मेघ के नीचे से बहेगा[7]। जिससे मेघ को अपने मार्ग में शीतलता का आभास होगा और मार्ग की थकावट से भी मुक्ति मिलती रहेगी। थकना मनुष्य का स्वभाव है, जो कि सजीव होता है। परंतु यहाँ निर्जीव मेघ में भी यक्ष थकावट का आरोप कर रहा है और मनुष्य के समान ही उसे थकावट से बचने के लिए शीतलता के उपाय बता रहा है।

यक्ष मेघ से कहता है कि हे मित्र! मैं जानता हूँ कि मेरी प्रिया के अथवा मेरे प्रिय कार्य के निमित्त तुम शीघ्रातिशीघ्र जाना चाहते हो। परंतु तुम्हें कुटज के फूलों से सुगंधित प्रत्येक पर्वत पर आनंद के कारण कुछ देर तो लग ही जाएगी तथा डबडबाते नेत्रों वाले मयूरों की टें-टें की ध्वनि को तुम अपना स्वागत शब्द जानकर अभिनंदित हुए तुम कैसे भी करके जल्दी जाने का प्रयास करना[8]। यहाँ यक्ष जानता है कि वह मेघ उसी के कार्य के लिए जा रहा है, तथा यक्ष यह भी चाहता है कि वह संदेश शीघ्रता से उसकी प्रिया के पास पहुँचे, इसीलिए वह बड़े ही सधे हुए शब्दों में मेघ को आतुर होकर नहीं अपितु विनम्रतापूर्वक जल्दी करने को कहता है। जैसे कोई मनुष्य अपने काम के लिए दूसरे मनुष्य को कहता है।

> “यक्ष मेघ से कहता है कि हे मित्र! मैं जानता हूँ कि मेरी प्रिया के अथवा मेरे प्रिय कार्य के निमित्त तुम शीघ्रातिशीघ्र जाना चाहते हो। परंतु तुम्हें कुटज के फूलों से सुगंधित प्रत्येक पर्वत पर आनंद के कारण कुछ देर तो लग ही जाएगी तथा डबडबाते नेत्रों वाले मयूरों की टें-टें की ध्वनि को तुम अपना स्वागत शब्द जानकर अभिनंदित हुए तुम कैसे भी करके जल्दी जाने का प्रयास करना।”

मेघ के माध्यम से अपना संदेश पहुँचाने का इच्छुक यक्ष मेघ के आनंद का भी ध्यान रख रहा है। यक्ष मेघ से कहता है कि दशार्ण की राजधानी विदिशा पहुँचकर तुमको वहाँ कामुकता का अर्थात् नायिका की उपभोग कामना का संपूर्ण फल प्राप्त होगा, क्योंकि तुम वहाँ स्वादिष्ट और तरंगित वेत्रवती नदी के जल को उसी भाँति पान करोगे जैसे कि कोई कामुक नायिका के भ्रूविलास युक्त मुख अर्थात् अधर का पान करता है और तुम्हारा इस प्रकार से पान करना तट प्रदेश पर गर्जन करने से सुंदर लगेगा[9]। कामुक होने की प्रवृत्ति मानव में होती है, परंतु यहाँ यक्ष मेघ में मानवीय भावनाओं का आरोप करते हुए उसे उसकी काम-लोलुपता को शांत करने का उपाय बतला रहा है।

यक्ष अपने मित्र और संदेशवाहक मेघ के आराम की भी चिंता करता है। यक्ष कहता है कि हे मेघ! तुम विदिशा के समीप विश्राम के लिए 'नीचैः' नामक पर्वत पर ठहर जाना, यह पर्वत उस समय तुम्हारे संपर्क को प्राप्त कर अपने पूर्ण विकसित कदंब वृक्षों से पुलकित जैसा प्रतीत होगा[10]। काम करते हुए आराम की आवश्यकता मनुष्य को होती है, क्योंकि वह कार्य करने से थकावट का अनुभव करता है, जो कि सर्वविदित है। परंतु यहाँ यक्ष निर्जीव मेघ में भी थकावट को आरोपित करते हुए उसे बीच-बीच में अपनी थकान को दूर करने हेतु आराम करने को कह रहा है।

यक्ष पुनः मेघ के आनंद को ध्यान में रखते हुए कहता है कि हे मेघ! यद्यपि उत्तर दिशा को जाते हुए तुम्हारा मार्ग थोड़ा टेढ़ा पड़ेगा तथापि तुम उज्जयिनी के प्रासादों (महलों) की अट्टालिकाओं के परिचय से पराङ्मुख मत होना, अर्थात् तुम उन्हें अवश्य देखना और यदि तुम वहाँ की सुंदरी स्त्रियों के बिजली की चमक से चौंधियाए या चकाचौंध हुए चंचल

कटाक्षपातों वाले नेत्रों से आनंद प्राप्त नहीं करते तो अपने को वंचित ही समझना[11]। जब हम कहीं घूमने जाते हैं तो हमारे मित्र अथवा संबंधी हमें उस स्थान विशेष की जानकारी उपलब्ध कराते हैं, साथ ही उनके द्वारा पूर्वपरिचित उस स्थान के स्थल विशेषों को अवश्य देखने को कहते हैं, और हमें अपने पर्यटन का पूर्ण आनंद लेने को कहते हैं। यहाँ यक्ष भी ठीक इसी प्रकार मेघ को स्थान-विशेष के विषय में जानकारी देता हुआ, जिस विशेषता के लिए वह स्थल प्रसिद्ध है, उसके विषय में कह रहा है। जैसे एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को बतलाता है।

मेघदूत का यक्ष अपने संदेशवाहक मेघ को केवल अपनी कार्यपूर्ति हेतु प्रयोग में न लाकर उसके हित और आनंद का भी बार-बार ध्यान रख रहा है, जैसे कि वह उसका कोई अपना ही बंधु है। यक्ष मेघ को पुनः कहता है कि जब तुम निर्विंध्या नदी के पास पहुँचोगे तो तुम्हें वहाँ उससे मिलकर नायिकोपभोग जैसा रतिसुख प्राप्त होगा, क्योंकि उस समय निर्विंध्या नायिका तरंग विक्षोभ के कारण शब्दायमान पक्षी-पंक्ति रूप करधनी की लड़ी को धारण किए होगी और स्खलित प्रवाह के कारण सुंदरतापूर्वक उसी प्रकार वह रही होगी जैसे मदवश कोई कामिनी मस्त चाल से झूमती हुई धीरे-धीरे चलती है। नदी में उठने वाले भँवर ही उस समय निर्विंध्या नायिका का रतिकामनावश अपना नाभि प्रदर्शन होगा, ऐसी निर्विंध्या नदी के जल प्रवाह में पड़कर तुम आगे के लिए जल भर लेना, जेसे कोई नायक, रतिकामनावश मस्त चाल से चलने वाली एवं अपने नाभि आदि सुंदर अंगों का प्रदर्शन करने वाली नायिका से बड़े चाव से मिलकर रतिसुख को प्राप्त करता है, और इस सुखानुभूति के समय तुम यह न सोचना कि नायिका द्वारा बिना मुख से प्रणय निवेदन किए, यह आनंद प्राप्ति कैसे होगी? क्योंकि कामिनियों का अपने प्रियतम के प्रति हाव भावों का प्रदर्शन ही उनका प्रथम रति प्रार्थना वाक्य होता है[12]। रतिसुख की प्राप्ति मनुष्य के लिए संभव है, मेघ के लिए नहीं। तथापि यक्ष मेघ को भी रतिसुख प्राप्ति हेतु उपाय बतला रहा है तथा रतिसुख प्राप्ति के बाद पुनः ऊर्जावान् हो मार्ग में आगे बढ़ने को कहता है। जैसे कि कोई मनुष्यरूपी यात्री कामसुख प्राप्ति के बाद अपने मार्ग की ओर अग्रसर हो रहा हो।

यक्ष अपने मित्र मेघ को काम के साथ-साथ धर्म की भी प्राप्ति करवाना चाहता है। इसीलिए वह मेघ से कहता है कि जब तुम विशाला नगरी पहुँचोगे तब तुम वहाँ के त्रिभुवनाधिपति पार्वतीश्वर महाकालेश्वर के पवित्र मंदिर में जाना जहाँ कि शिव सेवक गण तुमको अपने स्वामी शिव की कंठच्छवि के समान श्यामवर्ण देखकर तुम्हारा सम्मान करेंगे[13]। यक्ष मेघ से कहता है कि कदाचित् तुम संध्याकाल से अतिरिक्त अन्य किसी समय महाकाल मंदिर में पहुँचो तो तुम वहाँ तब तक ठहरे रहना जब तक कि सूर्यास्त न हो जाए। इस प्रकार शिव जी की संध्याकालीन पूजा में तुम नगाड़े की ध्वनि क्रिया को करके अपने गंभीर गर्जनों का संपूर्ण फल पा जाओगे। अर्थात् तुम संध्याकालीन आरती के समय नगाड़े की ध्वनि का काम करोगे तो तुम्हें अपने गंभीर गर्जनों का पूर्ण फल रूप धर्म की प्राप्ति होगी[14]। पुरुषार्थ चतुष्ट्य की प्राप्ति मानव का उद्देश्य हो सकता है, मेघ का नहीं। तथापि यक्ष मेघ के संदर्भ में धर्म और काम की बात कर रहा है। इसीलिए वह उसे शिव-वंदना हेतु प्रेरित कर रहा है। जिस प्रकार मनुष्य शिव-स्तुति कर स्वयं को धर्म की ओर उन्मुख मानता है।

यहाँ यक्ष अपने संदेशवाहक मेघ के विश्राम का भी ध्यान रखते हुए कहता है कि हे मेघ! देर तक चमकने और विलास करने के कारण अब तक तुम्हारी बिजलीरूपी पत्नी थक गई होगी इसलिए उस नगरी में किसी शून्य जन संचार रहित अट्टालिका पर विश्राम कर लेना और सूर्य निकलने पर पुनः अपने शेष मार्ग को पूरा करने को चल देना, क्योंकि जो सज्जन अपने मित्रों के कार्य को पूरा करने के लिए स्वीकार कर लेते हैं, वे कभी सुस्त नहीं होते। तुम मेरे मित्र हो अतः मुझे विश्वास है कि तुम मेरे कार्य को अवश्य पूरा करोगे[15]। यहाँ यक्ष को यह भय भी सता रहा है कि कहीं मेघ उसके कार्य को बीच में ही न छोड़ दे, इसीलिए वह उसको बीच-बीच में प्रेरित कर रहा है, तथा मेघ के आमोद-प्रमोद का भी पूर्ण ध्यान रख रहा है। साथ ही यक्ष मेघ को यह आभास करा रहा है कि मेघ कोई सामान्य नहीं अपितु उत्तम प्राणी है, इसीलिए यक्ष मेघ को कहता है कि यदि तुम्हारे जाते समय हिमालय के वन में तेज वायु के चलने से चीड़ वृक्षों की रगड़ से आग लग गई हो तो तुम अपनी तेज वर्षा से उसे बुझा देना क्योंकि ऐसा करना उत्तमजनों का कर्तव्य है[16]।

यक्ष पुनः मेघ का कल्याण करने की इच्छा से उसे शिव-स्तुति के लिए प्रेरित करता हुआ कहता है कि हिमालय की शिला पर शिव जी के चरण चिह्न विद्यमान हैं। योगी सदा इनकी पूजा करते हैं, अतः तुम भी भक्ति-भावना से उनकी प्रदक्षिणा करना, उनके दर्शन करने से निष्पाप श्रद्धालु जन मरने के बाद शिव जी के गणों के पद को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं[17]। यहाँ यक्ष मेघ के कल्याण के माध्यम से वास्तव में स्वयं का कल्याण चाह रहा है, इसीलिए वह बार-बार शिव-वंदना और धार्मिक क्रियाएँ करने को कह रहा है। उसे लग रहा है कि इससे उसका भी कल्याण होगा और उसे भी ईश्वरस्तुति के फलस्वरूप अभीष्ट की प्राप्ति होगी।

यक्ष मेघ से कहता है कि मार्ग में कैलास पर्वत पर देवांगनाएँ तुम्हें अपने स्नानागारों के लिए कृत्रिम जलधारा गृह (फव्वारा) बना लेंगी और तुमको वहाँ देर तक रोके रहेंगी। इसलिए यदि तुम्हें उनसे आसानी से छुटकारा न मिले तो तुम उन्हें अपने श्रुति कठोर गर्जनों से भयभीत कर देना और इस प्रकार उनसे छुटकर आगे बढ़ना[18]। वास्तव में यक्ष यह नहीं चाहता है कि उसके कार्य में किसी भी अनावश्यक प्रकार की देरी हो, इसलिए वह

मेघ को बीच-बीच में अपने कर्तव्य का बोध कराकर सचेत कर देता है।

यक्ष मेघ को उसकी सज्जनानुकूल प्रवृत्ति को पुनः स्मरण कराते हुए अंत में मेघ से प्रश्न करता है कि हे भद्रजन! क्या तुमने इस मेरे मित्र द्वारा करणीय कार्य को करने का निश्चय कर लिया है? पर अचेतन मेघ से कुछ उत्तर न मिलने पर भी वह स्वयं कहता है कि इस विषय में आपके स्वीकृति में उत्तर न देने से मैं यह कदापि नहीं समझता कि आप मेरे इस कार्य को नहीं करेंगे। अपितु इससे यह दृढ़ निश्चय होता है कि आप मेरा कार्य अवश्य ही करेंगे, क्योंकि आप तो उन सत्पुरुषों में हैं जो कि चातकों द्वारा प्रार्थित होकर बिना ही कुछ कहे अर्थात् बिना ही स्वीकृति में उत्तर दिए उनको जल देते हैं। यह सत्य ही कहा जाता है कि सज्जनों का परकार्य संपादन ही उनका उत्तर होता है अर्थात् सज्जन स्वीकृति में अपने प्रार्थियों को उत्तर नहीं देते अपितु उनका कार्य पूरा कर देते हैं। कार्य संपादन ही उनका उत्तर होता है[19]। सज्जन होने का स्वभाव मनुष्य का होता है, परंतु यहाँ मेघ में मानवीय भावना के आरोपण से उसे भी सज्जन कहा गया है।

मेघदूत में अनेक स्थलों पर प्रकृति का संवेदनशील रूप देखने को मिलता है। जहाँ जड़ कही जाने वाली प्रकृति भी मानव के सुख में सुखी और दुःख में दुखी देखी जा सकती है। वह मानव के समान ही व्यापार करती भी देखी जाती है। मेघ भी प्रकृति का एक अंग ही है जिसे देखकर विरही यक्ष उसे अपना संदेशवाहक बनाना चाहता है। यद्यपि यक्ष जानता है कि मेघ अचेतन प्रकृति का एक अंग ही है, तथापि वह यह भी अच्छी प्रकार से जानता है कि प्रकृति में मानव जैसी संवेदनशीलता है, वह मनुष्य के सुख-दुःख की संगिनी है, इसलिए उसे यह विश्वास है कि वह अवश्य उसके साथ सहानुभूति रखकर उसका संदेश पहुँचा देगा, उसकी संवेदनशीलता से आश्वस्त होकर ही यक्ष सर्वप्रथम, कुटज पुष्पों से उसकी पूजा करता है और फिर उसे अलकापुरी का मार्ग बतलाकर अपना संदेश भी सुनाता है[20]। यद्यपि मेघ उसके कथन का कोई भी उत्तर नहीं देता, फिर भी यक्ष उसे एक संवेदनशील भावनामय प्राणी ही मानता है और उसके साथ एक मानव जैसा व्यवहार करता है।

**संदर्भ :**


1. मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे॥
*(श्लोक संख्या-3, पृ. 7, पूर्वमेघ, मेघदूत, सं. डॉ. संसारचंद्र एवं पं. मोहनदेवपंत शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2006)*

2. कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु॥
*(श्लोक संख्या-5, पृ. 10, पूर्वमेघ)*

3. धूमज्योति : सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
*(श्लोक संख्या-5, पृ. 10, पूर्वमेघ)*

4. मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगर्वः।
गर्भाधानक्षण परिचयान्नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः॥
*(श्लोक संख्या-10, पृ. 19, पूर्वमेघ)*

5. कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रातपत्रां
तच् छुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः।
आ कैलासाद् बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः
सम्पत्स्यन्ते नभसि भवति राजहंसाः सहायाः।।
*(श्लोक संख्या-11, पृ. 21, पूर्वमेघ)*

6. नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्धरूढै-
राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम्।
जग्ध्वाऽरण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः
सारङ्गास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम्॥
*(श्लोक संख्या-21, पृ. 40, पूर्वमेघ)*

7. त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः
स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः
नीचैर्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्व गिरिं ते
शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम्॥
*(श्लोक संख्या-44, पृ. 88, पूर्वमेघ)*

8. उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः
कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते।
शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः
प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत्॥
*(श्लोक संख्या-22, पृ. 43, पूर्वमेघ)*

9. तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं
गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्धा।
तीरोपान्तस्तिनितसुभगं पास्यसि स्वादु यस्मा-
त्सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि॥
*(श्लोक संख्या-24, पृ. 47, पूर्वमेघ)*

10. नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रान्ति-हेतो-
स्त्वत्संपर्कात्पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः।
यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा-
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि॥
*(श्लोक संख्या-25, पृ. 50, पूर्वमेघ)*

11. वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः।
विद्युद्दामस्फुरण चकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि॥
*(श्लोक संख्या-27, पृ. 54, पूर्वमेघ)*

12. वीचिक्षोभस्तनित विहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः
संसर्पन्त्या स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः।
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु॥
*(श्लोक संख्या-28, पृ. 56, पूर्वमेघ)*

13. भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः
पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य॥
*(श्लोक संख्या-35, पृ. 69-70, पूर्वमेघ)*

14. अप्यन्यस्मिञ्जलधर! महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।
कुर्वन्सन्ध्या-बलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया-
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्ये गर्जितानाम् ॥
*(श्लोक संख्या-36, पृ. 71, पूर्वमेघ)*

15. तां कस्याञ्चिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः।
दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान्वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥
*(श्लोक संख्या-40, पृ. 80, पूर्वमेघ)*

16. तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसङ्घट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षपितचमरीबालभारो दवाग्निः।
अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रै-
रापन्नार्तिप्रशमनफलाः संपदो ह्युत्तमानाम्॥
*(श्लोक संख्या-55, पृ. 114, पूर्वमेघ)*

17. तत्र वैव्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्धेन्दुमौलेः
शश्वत्सिद्धैरुपचितबलिं भक्तिनम्रः परीयाः।
यस्मिन्दृष्टे करणविगमादूर्ध्वं मुद्धूतपापाः
कल्पन्तेऽस्य स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधाना॥
*(श्लोक संख्या-57, पृ. 119, पूर्वमेघ)*

18. तत्रावश्यं वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं
नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम्।
ताभ्यो मोक्षस्तव यदि सखेधर्मलब्धस्य न स्या-
त्क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भाययेस्ताः॥
*(श्लोक संख्या-63, पृ. 134, पूर्वमेघ)*

19. कच्चित्सौम्य! व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे
प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां कल्पयामि।
निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः
प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव॥
*(श्लोक संख्या-54, पृ. 277, उत्तरमेघ)*

20. स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
पीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार।।
*(श्लोक संख्या-4, पृ. 8, पूर्वमेघ)*

# हहराता सावन

कहीं छिपा है नटखट सावन, एक अरसे से ढूँढ़ रही हूँ कि तनिक बोलूँ, बतियाऊँ उससे। पर आजकल उसके रंग-ढंग समझ में नहीं आते! एक समय था जब सावन कहते ही कई भाव एक साथ उमड़ पड़ते, कई दृश्य एक साथ उभरने लगते । झमाझम बरसता पानी, नृत्य करते मोर और उनके साथ नाचते-गाते बादल और बिजली, झूमती हरियाली, युवती का लहराता आँचल, भीगता युगल, कृष्ण की बाँसुरी, गोपियों और राधा का अनुपम नृत्य; सावन के झूले, सुहागिनों के हाथों में हरी-हरी चूड़ियाँ और भाई-बहन का नेह पर्व रक्षाबंधन। सावन का ही महीना था जब हमारा देश स्वतंत्र हुआ, हमारा अपना तिरंगा लहराया, देश की आन, बान और शान का प्रतीक।

यूँ तो पावस का शुभारंभ जेठ की तपिश से त्राण दिलाते आषाढ़ से ही हो जाता है। कई हजार आँखें टँग जाती हैं आसमान पर, सूरज की धधकती आग सीने पर झेलती धरती भी मौन गुहार लगाती है, पर आजकल बादलों ने बैरी पिया का स्वभाव आत्मसात् कर लिया है। आते हैं, मचलकर, इठलाकर तो कभी हो-हल्ला मचाकर चले जाते हैं, मानो पावस-दूत न हुए चुनाव-प्रचारक हुए। बड़ी-बड़ी बातें, बड़े-बड़े वादे; समय निकल जाने पर सब टाँय-टाँय फिस्स। यह ऋतु भी तो टिकट पाए उम्मीदवार की शक्ल अख्तियार किए हुए है, निर्वाचन के पूर्व रोज गरीब बस्ती के चक्कर काटती है, पतली धार ही सही, बरसाकर अपने ईमानदार होने का आश्वासन देती है और जब रोपाई-बुआई हो जाती है और पावस की पादृष्टि की जरूरत होती है तो निर्वाचित नेता/नेत्री-सी किसी महल, किसी अटारी का हिस्सा बन जाती है, दिल ने चाहा तो बेबस प्राणियों को दर्शन दिए, नहीं तो प्रियजनों को शीतल करती रही।

किंतु आज कई वर्षों से सावन से ठीक ढंग से मुलाकात नहीं हो रही। या तो वह रिक्त बादल की शक्ल में आता है और हमसे लुका-छिपी का खेल खेलकर चला जाता है, फिर चुपके से उतर आता है दीन कृषकों की आँखों में—और कभी हहराता हुआ। कभी-कभी तो उनके जीवन पर महाजन बनकर इतने ओले बरसाता है कि पूरा का पूरा परिवार नेस्तनाबूद हो जाता है। या तो विस्थापन या मृत्यु उसका विकल्प होती है। किसान भूमिहीन मजदूर के रूप में शहर में साँस ढूँढ़ता है या साहूकार व महाजन के खेत पर बंधुआ मजदूर के रूप में मजूरी करते हुए आने वाली पीढ़ी को घुटती हुई साँस की सौगात दे जाता है। ऐसे में कोई कैसे गाए

**डॉ. आरती स्मित**

**महासचिव :** साहित्यायन ट्रस्ट

**सदस्य :** इंडियन सोसायटी आफ ऑथर्स

**संप्रति व्यवसाय :** स्वतंत्र लेखन, संपादन, आलोचना, समीक्षा एवं अनुवादकार्य (विभिन्न प्रकाशन केन्द्रों के लिए, विशेष—प्रथम बुक्स, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, सार्क कल्चर सेंटर एवं एमनेस्टी इन्टरनेशनल के लिए)

**प्रकाशित पुस्तकें :** अन्तर्मन एवं ज्योति कलश, बदलते पल, फूल-सी कोमल वज्र-सी कठोर।

**संचयित एवं संपादित :** पगध्वनि, बिखरे पुष्प।

कात्यायनी प्रोडक्शन हेतु 'चैतन्य महाप्रभु' धारावाहिक नाटक लेखन एवं प्रसारण।

**संपर्क :** dr.artismit@gmail.com

**बेचारा चातक! उसे तो इस उलटफेर का पता ही नहीं और बेचारे कृषक जो पीढ़ी दर पीढ़ी संसार को तो पालते हैं पर खुद कब व्यंजनों से सजी थाली खाई थी, याद नहीं। समृद्ध कृषक तो गिने-चुने हैं, उनमें से कुछ तो अंग्रेजों के तलवे चाटकर छोटे-बड़े जमींदार बने रहे और जब जमींदारी भी खत्म हो गई तो समृद्ध किसान बने रहे। ऐसे लोगों का दिमाग आज भी आसमान पर रहता है और पाँवों तले गरीब किसानों को मसलते रहते हैं।**

मल्हार! अतिवृष्टि हो या अनावृष्टि, मरते कृषक हैं। पर धन्य हैं हमारे अन्नदाता कृषक और कृषक बालाएँ व स्त्रियाँ, जो फसल रोपती हुई बुआई के गीत से मौसम और परिवेश को मधुरता से भर देती हैं। उनके कंठ से फूटता गीत किसी साज का मोहताज नहीं। चहुँश दिशाएँ उनके लोकगीत से गुंजित होती हैं और शहरों में धूल फाँकती नैसर्गिकता उनसे आशना पाती हैं। सावन उन्हें हँसाता है, रुलाता है, मगर वो तो सिर्फ और सिर्फ खुशहाली ही बाँटती हैं :

*एक बूढ़ी औरत सोह रही है खेत*
*साथ ही सुरीले कंठ से*
*छींट रही है उसमें*
*आदिम गीतों के*
*न पुराने होने वाले कच्चे बीज*
*एक अल्हड़ युवती*
*रोप रही है धान*
*साथ ही रोपती जा रही है*
*लोकगीतों की हरियाली*

चिमनियों से धुआँ उगलता पूँजीवादी संसार भूल जाता है कि पावस नहीं तो हरियाली नहीं, किसान नहीं तो अनाज नहीं, वन नहीं तो सुरक्षित पर्यावरण नहीं, स्वच्छ जल नहीं तो जीवन नहीं। इन्हें नष्ट करके वे अपने लिए सोने-जवाहरात से जड़ित महल बना भी लें तो क्या उनके दाँत सोने की रोटी और हीरे-मोती की सब्जी से पोषण पाएँगे? आधुनिकता की अंधी दौड़ में सारे आँख वाले गांधारी और भीष्म पितामह बनने की हठ में भूलते जा रहे हैं कि प्रकृति से छिड़े युद्ध में विजयश्री केवल और केवल प्रकृति को ही चुनेगी क्योंकि मानव अपना नैसर्गिक गुण भूल सकता है, प्रकृति के प्रति अपने दायित्व से मुँह मोड़ सकता है, मगर प्रकृति नहीं। वह तो जननी है प्राणीमात्र की, उसके हृदय में सबके लिए अथाह वात्सल्य है। फिर चाहे वह स्वयं को सर्वशक्तिमान समझने वाला मनुष्य हो या घने जंगल में पेड़ के ऊपरी हिस्से में पूरी जिंदगी गुजारने वाला डॉरमाउस और नन्हा मेढक या कि पौधे की पत्तियों पर ताउम्र बसेरा करने वाला कीड़ा। धूप, हवा और पानी सबको चाहिए। प्रकृति मुक्तहस्त सबके लिए जीवन लुटाती है। छोटे और कमजोर समझे जाने वाले जीव प्रकृति के साथ भूलकर भी छेड़छाड़ नहीं करते, कर ही नहीं सकते! इतनी अक्ल कहाँ उनमें! अक्ल का ठेका तो हम मानवों ने ले रखा है जो 'वसुधैव कुटुंबकम' को 'ग्लोबलाइजेशन' से परिभाषित करने में लगे हैं। अपनी ही नींव खोदकर आसमान को चुनौती देने की सोच रहे हैं, माफ कीजिए, सोच नहीं रहे, दे रहे हैं, नतीजा अम्ल वर्षा! अब नवयौवना इस अम्ल वर्षा में अपने प्रेमी के साथ कौन-सा राग छेड़े! ओजोन छतरी में वर्षों पहले छिद्र की संभावना सच में तब्दील हो गई। उद्योगपतियों की पीढ़ियाँ बदलीं, स्वार्थपरता बढ़ी क्योंकि नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी से अधिक समझदार, अधिक आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों से लैस है। उन्हें जल से भरे काले बादलों के विचरने की बात बेवकूफी भरी लगती है। अब, बादल जल के कारण श्यामल नहीं होते वरन् कारखानों से उगली जाने वाली जहरीली गैसों के प्रभाव से काले होते हैं, बची-खुची कमियाँ आणविक हथियार और सुरक्षा-अस्त्र-शस्त्र के नाम पर तैयार उपकरण और दीपावली व शब-ए-बरात के नाम पर करोड़ों के पटाखे पूरी कर देते हैं। सच मानिए, अब काले बादल सावन में नहीं मँडराते, वे तो दीपावली पर मँडराते हैं वेश बदलकर ताकि लील सकें पूरा का पूरा आकाश! महानगरों में अब आसमान का रंग घड़ी की सूई के साथ कभी नीला, कभी गोधूलि और कभी काला या तारों से जगमगाता नहीं दिखता, दिखता है तो बस स्याह! एकरंग, एकरस—नीरस-सा! अब आसमान देखकर अनुमान लगाना कठिन होता जा रहा है कि कौन-सा नक्षत्र कब प्रवेश करेगा और किस नक्षत्र की वर्षा किस समय शुरू होगी। बेचारा चातक! उसे तो इस उलटफेर का पता ही नहीं और बेचारे कृषक जो पीढ़ी दर पीढ़ी संसार को तो पालते हैं पर खुद कब व्यंजनों से सजी थाली खाई थी, याद नहीं। समृद्ध कृषक तो गिने-चुने हैं, उनमें से कुछ तो अंग्रेजों के तलवे चाटकर छोटे-बड़े जमींदार बने रहे और जब जमींदारी भी खत्म हो गई तो समृद्ध किसान बने रहे। ऐसे लोगों का दिमाग आज भी आसमान पर रहता है और पाँवों तले गरीब किसानों को मसलते रहते हैं। फिर इन्हीं के बच्चे विश्वविद्यालयों में आयोजित किसान की मृत्यु पर आलेख-पाठ करते हैं, तालियाँ बजती हैं, लिफाफा दिया जाता है, एसी में टिकट या हवाई यात्रा का टिकट और एसी कमरे का उपभोग कर किसान की बदहाली पर दो मगरमच्छी आँसू गिराने का हुनर आता है उन्हें। मेहनतकश कृषक कभी समृद्ध होने की सोच भी नहीं सकता। उसके लिए उसकी धरती माँ है और माँ को बचाने के लिए वह जान लगा देता है, अपनी जमीन पर खेती करने से बड़ा सुख उसके लिए कोई भी नहीं—

*माना घना कुहरा है*
*पर अर्थ नहीं कि*
*सूरज नहीं उगा है।*

इन भोले-भालों के लिए समय पर वर्षा होना प्रकृति की सबसे बड़ी नेमत होती है। ऋण से उबर पाने की उनकी उम्मीदें बँधती हैं, उन्हें वर्षा की हर बूँद अमृत-तुल्य लगती है। किंतु मानव-मात्र से रुष्ट ऋतु जब अपना आक्रोश प्रकट करती है तो उसका कोपभाजन भी ये गरीब प्रकृति पूजक ही होते हैं। 'का वर्षा जब कृषि सुखाने' की स्थिति में जब ये शहर की ओर पलायन करते हैं तो इनका पलायन केवल दैहिक स्तर पर ही नहीं होता, वरन् मानसिक और आत्मिक स्तर पर भी होता है। मजूरी या अन्य रोजगार की तलाश में भटकते ये निरीह, कामगारों के रूप में प्रकृति को चुनौती देते हैं कि पूँजीपतियों की तरह वह भी चाहे जितना जतन करे, वे हारेंगे नहीं। कुमार अनुपम की कविता की कुछ पंक्तियाँ अनायास स्मृति में कौंध रही हैं :

*सूरज जब पारे-सा नस-नस में दौड़ेगा*
*रोमकूप अपने भरे नहीं हैं अभी*
*अपनी बरसात में अनथक नहाएँगे*
*बर्फ के टुकड़े-सी साँसें शीतलहर में*
*भीतर की ओर जब फिसलेंगी*
*फेफड़े की धौंकनी बढ़ाएँगे*
*ऊष्मा के लिए चोट खाएँगे*

*चूर-चूर उमस से*
*बरखा जब तू-तड़ाक करेगी*
*ओट बना सिहरन की छुप-छुप जाएँगे*

शहरों में, मकान की टिप-टिप और सड़क की किच-किच से जूझता निम्न मध्यवर्ग सावन का आनंद नहीं ले सकता। सावन के गीत अब फिल्म में अच्छे लगते हैं। पुराने जमाने के बचे हुए रंगीन मिजाज के युवा, भले ही जिनकी झुर्रियाँ चेहरे पर लीपापोती के बाद भी न छिप पा रही हों, वे अपना जमाना और उस जमाने के सावन की हरियाली याद करते हैं, याद करते ही उनके झुर्रीदार चेहरे पर उनके अंतस का हरियरपन नूर बनकर छाने लगता है। वे आज के युवा को कोसते हैं कि उनके मन में कोई उत्साह ही नहीं। अब कौन समझाए उन्हें कि अंधे को सब हरा-हरा दिखता है। जब पढ़ाई पूरी करने के बाद माँ-बाप की उम्मीदें आँखें बनकर बेटे के दिमाग में उग आती हैं और साक्षात्कार में बार-बार असफलता मिलती है तो रस्सी का फंदा दिखता है, बेरोजगार होने के ताने सुनाई पड़ते हैं, अवसाद के धुँधलके में, खाली जेब और झूठी उम्मीदों के साथ घर की ओर लौटते कदम किसी हरे-भरे उद्यान की ओर नहीं मुड़ पाते, वे फिर से मुड़ जाते हैं नौकरी से संबंधित खबरों की तलाश में। वे रोज मरते हैं, बार-बार मरते हैं, प्रिया की

आँखों में डूबकर मरने का उनके पास समय नहीं। और अब तो महँगाई और जीवन-स्तर, महँगी शिक्षा व नौकरी के लिए लगी लंबी कतार में युवतियों की संख्या भी कम नहीं। अब मूँगफली खाकर जीवन गुजारने के वादे पर शिक्षित और समझदार युवतियाँ विश्वास नहीं करतीं, वे स्वावलंबन चाहती हैं और सहयोगी के रूप में जीवनसाथी। वे जानती हैं कि भावुकता की बारिश में भीगकर यदि एक बार उसने बेरोजगार प्रेमी का हाथ थाम लिया तो आजीवन उसकी आँखें बरसेंगी और घर के बर्तन बजेंगे। आज भी गाँवों-कस्बों में लड़के के पिता का खानपान देखकर उनके घर ब्याही गई युवतियाँ अपने जीवन से सावन के आह्लाद को भूल जाती हैं। उन्हें याद रखना होता है बस, बहू होने का कर्तव्य। उनकी मर्जी, उनका सपना, ऋतु के साथ जुड़ी संवेदना या रुचि के लिए कहीं कोई जगह नहीं होती। ऐसे में महाकवि कालिदास की अक्षय कृति 'मेघदूतम' की नायिका होने की कल्पना कोई कैसे करे? सावन में कस्बे की सुबह का एक रंग विशाल श्रीवास्तव की इन पंक्तियों में मुखर होता है :

*बारिश में भीगी कस्बे की सुबह*
*पूरी तरह गीली और उदास है*
*और अचानक*
*क्षितिज पर कोई लापरवाही से*
*थका हुआ बेढब सूरज*
*टाँककर चला गया है चुपचाप।*

ऐसा नहीं है कि अब सावन नहीं बरसता। अब भी बरसता है। पर जरा शक्ल अलग हो गई है, अब वह राजनीतिज्ञों, अफसरशाहों, उद्योगपतियों और उच्च पदों पर आसीन रिश्वतखोर प्रबुद्धजनों के घर के अंदर बरसता है या फिर नाइट क्लबों में शराब के नशे में लड़खड़ाते चरित्रों से बरसता है। किसी की अमीरी बरसती है, किसी की गरीबी बूँद-बूँद जाया होती है और उन्हीं बेबसी के पैसों से भूख की दलदल में धँसा परिवार पलता है। सावन उन खुशकिस्मत नस्ली कुत्तों के लिए भी बरसता है जो शावर के नीचे बाथ टब में मालकिन के हाथों नहलाए जाते हैं, भले ही उसकी अपनी संतान को आया नहला रही हो और सावन वहाँ भी बरसता है जहाँ सूखी बावरी के तले सटे गंदे पानी का एक लोटा पाने के लिए आदमी कुत्ते की मौत मरता है। मुझे पुरानी फिल्म के कुछ गीत अनायास याद आने लगे हैं— 'अल्लाह मेघ दे पानी दे, पानी दे गुरधानी दे, अल्लाह मेघ दे'; 'मेघा रे मेघा रे।'

अब तो शून्य में आँखें टँगी हैं कि सावन इस बार कहाँ बरसेगा— कहाँ-कहाँ बरसेगा! हरियाली लाएगा या बाढ़! क्या यह हरियाली कुछ गरीबों के नसीब में होगी या उनके हिस्से सिर्फ बाढ़ आएगी? सावन की बूँदें किसी युवा का मन अकुलाएँगी या उसकी आँखों से बह जाएँगी? ओह! एक ही शहर में जिंदगी की तरह सावन दो खेमों में विभाजित नजर आने लगा है। अच्छा हुआ कालिदास जी, आप पहले ही आकर चले गए, वरना इस विद्रूप समय में आप 'मेघदूत' शायद रच न पाते!

# पावस ऋतु

**डॉ. शशांक शुक्ला**

(22 सितम्बर, 1979)

अध्यक्ष, हिंदी विभाग, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखंड, उच्च शिक्षा बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से।

प्रमुख पत्र पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित

सोलह पाठ्यपुस्तकों का संपादन।

**संपर्क :**

parmita.shukla@gmail.com

ग्रीष्म तप चुका है। लोग कह रहे हैं, इस साल अच्छी बरसात होगी। अच्छी तपन के पश्चात् अच्छी बरसात होगी ही... यह तो प्रकृतिजन्य है। इसीलिए तो प्रकृति अपना स्वरूप परिवर्तित कर लेती है...। प्रकृति का यह शृंगार आत्म के लिए कम से कम है किंतु पर के लिए अधिक से अधिक। तीन-चार बार बरसात हो चुकी है। धरती हरी-भरी होने लगी है... हालाँकि ताल-तालाब अभी भरे नहीं हैं, लेकिन वे भी धीरे-धीरे भर जाएँगे। (सिमट-सिमट जल भरे तालाब-मानस, तुलसी)। धीरे-धीरे तालाब-मनुष्य भर जाएँगे। यह उनकी नियति है। मानव और प्रकृति के विस्तार और संकुचन का सिद्धांत प्रायः एक जैसा ही है।

ग्रामीण जन भविष्य के कृषि-कर्म की तैयारी कर रहे हैं...कृषि-यंत्र तैयार किए जा रहे हैं... बीज जुटाए जा रहे हैं..ग्रीष्म में शहर गए युवान वापस आने लगे हैं... बैल और गाय हरे चारे के पश्चात् स्वस्थ होने लगे हैं...। लेकिन अब धीरे-धीरे बैल कम होने लगे हैं। उनका स्थान ट्रैक्टर जैसे कृषि-यंत्रों ने ले लिया है। हल से खेत की जुताई अब पुरानी चीज होती जा रही है। श्रम का अभाव और समय की गति के बीच भागने की दौड़ ने हल द्वारा खेती किए जाने की घटना को अप्रासंगिक बना दिया है। फिर भी छोटे किसानों के लिए बैल और हल अब भी आधारभूत साधन बने हुए हैं....न केवल आर्थिक उपयोग के संदर्भ की दृष्टि से बल्कि पारिवारिक संदर्भ की दृष्टि से भी... आत्मिक लगाव के कारण भी... कृषि में यंत्र का उपयोग हो... समय की माँग है और हम इतिहास की गति को लौटा नहीं सकते। इस संदर्भ में मेरी चिंता का विषय कुछ दूसरा ही है। यंत्र के कारण हमारे लोकगीत नष्ट होते जा रहे हैं। हाँ, यह ठीक है कि लोकगीतों के संरक्षण का कार्य होता रहा है और अब भी हो रहा है, किंतु गतिशील परंपरा और संरक्षित विचार में निश्चित रूप से फर्क होता है। कहाँ श्रम के साथ गाए जाने वाले गीत और कहाँ अध्ययन का विषय बने गीत। संस्कृति की गतिशीलता और जीवंतता का स्थान विकास लेता जा रहा है। कृषि कार्य में यंत्र के प्रयोग

से एक दूसरी बात यह हुई है कि इससे सामूहिकता की भावना कम होती जा रही है। सामूहिक कर्म सामूहिक भाव के जनक होते हैं और एकल कर्म व्यक्तिवाद का जनक बनता है। निश्चित ही हमारा परिवेश हमें रचता है और हम अपने परिवेश को पुनः रचते हैं।

की ओर टकटकी लगाए ही रह जाते हैं। मनुष्य कब संतुष्ट होता है? वह निरंतर कर्म ही करता रहता है। 'मेघा रे...मेघा रे...' की रटंत लगाए ही रखता है। सावन की रिमझिम से अपने को सराबोर कर लेना चाहता है। 'रिमझिम गिरे सावन...'/'लगी आज सावन की फिर वो झड़ी है...' जैसे गीत का संबंध भी यहाँ है और नदी-नाले-तालाब का भी...। पावस के जल को देखकर ही मुहावरा चल निकला होगा– 'भरा-पूरा होना...' यानी 'संपूर्ण रूप में होना'........ 'तृप्त होना....'। प्रकृति की तृप्ति पावस में ही छलकती है.... लेकिन पावस का सर्वाधिक महत्त्व तो कृषि कर्म के प्रसार व भौतिक उन्नति से जुड़ा हुआ है। पावस व कृषि-कर्म के विस्तार पर ऋग्वेद में विस्तार से चर्चा मिलती है। 'फालाः नः भूमिं शुनं वि कृषन्तु।' रामविलास शर्मा ने कृषि का पूर्व रूप कृष्टि या कर्ष माना है [4.57.8] लेकिन महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ऋग्वेद में इंद्र और वृत्त युद्ध का वर्णन... स्पष्ट रूप से यह संकेत करता है कि उस समय तक कृषि-सभ्यता का विकास-प्रसार हो चुका था। ऋग्वेद में इंद्र पर 250 सूक्त हैं। वह वर्षा का देवता है। इसके विपरीत वृत्त सूखे का दानव है। इंद्र द्वारा वृत्त वध की कथा भी आई हुई है। शर्मा जी ने इंद्र को मुख्यतः वर्षा का ही देवता माना है, युद्ध का नहीं। युद्ध का देवता इंद्र, उनके अनुसार गौण रूप में ही है। इस संदर्भ में मैकडनल ने लिखा है कि– 'बादलों को हमेशा उनके अभ्र आदि नामों से नहीं याद किया जाता। गौ (गाय), ऊधर (थन), उत्स (झरना), कवंध (कलश) आदि नामों से बादलों का उल्लेख है।' वरुण कवंध और सोम उद्रिणं कवंधम इत्यादि से स्पष्ट है कि पानी से भरे हुए कवंध नीचे की तरफ उलट देते हैं....। ऋग्वेद में कृषि सभ्यता व उसके प्रमुख भाग पशुपालन, दोनों के संबंध में पर्याप्त सामग्री मिलती है। संभवतः भारत को 'कृषि सभ्यता का देश' कहने के पीछे 'ऋग्वेद' के साथ ही हमारे महाकाव्यों की भी प्रमुख भूमिका रही है। 'रामायण' महाकाव्य में जनक का खेती करना व सीता (हल के फाल से...) की उत्पत्ति की प्रसिद्ध घटना से हम सब परिचित ही हैं...। राजा द्वारा हल चलाने की घटना का संदर्भ जयशंकर प्रसाद ने 'पुरस्कार' नामक प्रसिद्ध कहानी में भी रखा है। 'महाभारत' की प्रसिद्ध घटना इंद्र की वर्षा से कृष्ण का गोकुलवासियों की रक्षा

> **"'पावस ऋतु' का संबंध जल, जमीन, जानवर, जंगल और कृषि से है। ग्रीष्म ने पृथ्वी से आकाश का जो जल दान कराया था, आकाश अब उससे ऊऋण होना चाहता है.... आखिर कर्ज को वह कितनी देर तक अपने पास सँभाल के रख सकता है? ऋण के दबाव में मनुष्य हो या प्रकृति, कब तक जीना पसंद करेंगे.... और ऋण तो वैसे ही समय चक्र से बँधा ही होता है।"**

'पावस ऋतु' का संबंध जल, जमीन, जानवर, जंगल और कृषि से है। ग्रीष्म ने पृथ्वी से आकाश का जो जल दान कराया था, आकाश अब उससे ऊऋण होना चाहता है.... आखिर कर्ज को वह कितनी देर तक अपने पास सँभाल के रख सकता है? ऋण के दबाव में मनुष्य हो या प्रकृति, कब तक जीना पसंद करेंगे.... और ऋण तो वैसे ही समय चक्र से बँधा ही होता है। दूसरे यह कि कृतज्ञ मनुष्य हो, प्रकृति या संस्कृति, वह लिए जाने से ज्यादा लौटा देना चाहते हैं... हाँ, परोपकार से व्यक्ति क्या ऊऋण हो सकता है? लेकिन लिए से ज्यादा लौटा करके व्यक्ति-प्रकृति 'सामासिक संस्कृति' का प्रसार अवश्य करते हैं। तो पावस ऋतु मुक्तहस्त से जल को लुटा रही है... वह सब कुछ समर्पित कर देने के लिए व्याकुल है। 'समर्पित कर देना'...... 'सब कुछ लुटा देना' जैसे मुहावरे पावस ऋतु के दृष्टांत से तो नहीं बने? आखिर किसी और ऋतु में प्रकृति इतना उदार तो नहीं बनती। सब कुछ उड़ेल देने का भाव, उलीच देना और फिर दे-देकर अपने को संतुष्ट करने की कला निश्चित रूप से मनुष्य ने प्रकृति से सीखी होगी...पावस से सीखा होगा। और यह प्रकृति से लेने का ऐसा भाव निर्मित हुआ होगा कि हम पावस में आकाश

निश्चित रूप से संस्कृति, साहित्य और लोक जीवन की संवेदना का मानवीकृत रूप है। प्रकृति हमारे लिए मनोभावों को संयोजित करने का माध्यम बन जाती है। इसीलिए तो वह सुख और दुःख दोनों को व्यक्त करने का माध्यम बन पाती है। 'मेरे नैना सावन-भादों, फिर भी मेरा मन प्यासा'। मनुष्य प्रकृति से दृष्टांत/उदाहरण ले ही लेता है...प्रकृति-पुत्र जो है। पावस में धरती फिर से तरोताजा हो जाती है... उसे नया यौवन मिलता है। नवयुवती के समान वह फिर से शृंगार कर लेती है। चारों ओर हरियाली....। हरा रंग पावस में ही आकर प्रफुल्लता का प्रतीक बन जाता है। 'हरा हो जाना' का अर्थ ताजगी से भर जाना भी होता है। पावस पेड़-पौधे के रोपण का समय भी है। जल की प्राप्यता के बीच पौधे जल्द ही जड़ पकड़ लेते हैं। 'जड़ से मजबूत होना' कहावत का संबंध पावस से ही होगा.... नहीं तो दूसरी ऋतुओं में ऐसी जल-सुलभता कहाँ... इसीलिए तो संपूर्ण विनष्ट हो जाने को 'जड़ से उखड़ जाना' कहते हैं... तो जड़ से जुड़ा व्यक्ति ही स्थायी रूप से टिक सकता है। तो जमीन की उर्वरता..... संतृप्ति के लिए पावस ऋतु आती है। पावस पशु-पक्षी के संरक्षण की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। जंगल का विस्तार

करने की घटना से भी हम परिचित हैं। इस घटना को कुछ लोगों ने कृषि सभ्यता व गोपालक संस्कृति के विरोध के रूप में भी देखा है। अलग-अलग दृष्टि है... जिसे चाहे जो देखे... किंतु मैं तो इसे अनियंत्रित वर्षा से कृषि के बचाव के उद्यम के रूप में देखता हूँ। महाभारत में ही एक दूसरी घटना भी है। अग्नि के अजीर्ण के प्रसंग में इंद्र व कृष्ण की कथा आई हुई है। संकेत रूप में, प्रकारांतर से इस घटना को हम चाहें तो गोपालक संस्कृति (कृष्ण) व ब्राह्मण संस्कृति (यज्ञ कर्म) के द्वंद्व के रूप में भी देख सकते हैं। महाभारत काल तक पावस ऋतु (कृषि सभ्यता) का महत्त्व है...। बौद्ध-जैन संस्कृति में कृषि की बजाय व्यापार को महत्त्व प्राप्त हुआ। ये संस्कृतियाँ शिशिर व ग्रीष्म में ज्यादा फली-फूली होंगी। गुप्तकाल में आकर कालिदास ने फिर से न केवल सामंती मूल्यों को पुनर्जीवित किया बल्कि पावस संस्कृति (कृषि संस्कृति) को भी महिमामंडित किया। कालिदास मुझे तो अपने तमाम रोमानीपन के बावजूद किसानी संवेदना का ही कवि ज्यादा लगता रहा है। 'मेघदूतम' तो पावस ऋतु का ही ग्रंथ है। कालिदास के अन्य ग्रंथों में भी किसानी चित्र... पावस के चित्र कम नहीं खींचे गए हैं। 'ऋतुसंहार' में 29 श्लोकों में वर्षा ऋतु का वर्णन कालिदास ने किया है। कालिदास ने बादल, मेघ को न केवल सौंदर्य के अर्थ में बल्कि जीवन की गति के रूप में यानी किसानी संवेदना के रूप में भी प्रयोग किया है। उनके यहाँ वर्षा ऋतु में मनुष्य, प्रकृति और जीवों का संयुक्त साहचर्य है। 'मेघदूत' में यक्ष की चिंता केवल प्रिय मिलन की नहीं है, साथ ही कृषि न हो पाने की चिंता भी है। पूरा 'मेघदूत' पावस ऋतु के बीच ही रचा जा सकता था। यह महान ग्रंथ हमें पावस ऋतु के कारण ही प्राप्त हो सका है। संसार की किसी भी भाषा में...किसी भी साहित्य में पावस ऋतु से प्रेरणा लेकर ऐसा महान ग्रंथ नहीं लिखा गया है। भारत वर्ष का प्राचीन काल जीवंत और गतिशील काल रहा है। मेघ और संगीत के बीच भारत की जातीय परंपरा विकसित हुआ करती थी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है— 'मेघदूत का अमर संगीत इसी काल में संभव था। कोई आश्चर्य नहीं यदि केका की आवाज से, मेघों के गर्जन से, मालती लता के पुष्प विकास से, कदंब की भीनी-भीनी सुगंध से और चातक की रट से मनुष्य का चित्त उत्क्षिप्त हो जाए— वह किसी अहैतुक औत्सुक्य से चंचल हो उठे। वर्षा का काल ही ऐसा है। 'हिंदी साहित्य का भक्तिकाल भी किसानी संवेदना से युक्त काल है। फिर वह चाहे जायसी हों या तुलसी। भक्ति साहित्य में किसानी जीवन व पावस ऋतु के प्रसंग बहुतायत में हैं। कबीर के यहाँ पावस ऋतु का सम्मान कम है ...मूलतः बुनकरी व्यवसाय में होने के कारण शायद कृषि कर्म से वैसा लगाव संभव भी न था। तुलसी का साहित्य किसानी संस्कृति व पावस ऋतु के चित्रों से भरा हुआ है। लेकिन तुलसी ने पावस की विडंबना दादुर का भी संकेत किया है। 'पावस ऋतु देखकर हुई कोकिला मौन/अब तो दादुर बोलिहें हमें पूछिबो कौन?' यानी कभी-कभी संपन्नता का समय निरर्थक लोगों को भी महिमा मंडित कर देता है। जायसी का नागमती वियोग वर्णन तो नागमती के बहाने किसान समस्या को ही चित्रित करता है। नाग, नागमती का चित्रण यहाँ रानी की बजाय सामान्य किसान स्त्री रूप में ही है। सूर का ब्रजमंडल भी पावस ऋतु में ही विशेष रूप से गतिशील हुआ है। इसी प्रकार प्रेमचंद, निराला, नागार्जुन, केदार... ये सब किसानी संवेदना के रचनाकार हैं। यानी मूल रूप से पावस ऋतु से प्रेरित और क्रियाशील होने वाले।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने पावस ऋतु के बहाने सावन के झूले का स्मरण कराया है। हिंडोले पर हिंदी साहित्य में कई रचनाएँ मिलती हैं। कृष्णभक्ति परंपरा में हिंडोले पर ढेरों रचनाएँ मिलती हैं। एक प्रश्न यह भी उठता है कि क्या कारण है कि

बारहमासे का प्रारंभ आषाढ़ मास यानी वर्षा ऋतु से होता है? आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसका समाधान सुझाते हुए लिखा है कि— 'वियोगियों के लिए वर्षा का समय सबसे अधिक कष्टदायक होता है। सामाजिक व्यवस्था के अनुसार चौमासे में परिव्राजक एक स्थान में स्थित रहते हैं।' चातुर्मास की यह व्यवस्था बहुत प्राचीन काल से चली आई है। चातुर्मास की यह परंपरा हिंदू शास्त्र के अतिरिक्त बौद्ध परंपरा में भी मिलती है। आचार्य मिश्र ने इस परंपरा को साहित्य की परंपरा से जोड़ा है। वे लिखते हैं— 'चातुर्मास्य के इस वैशिष्ट्य को ध्यान में रखकर विद्यापति ने बारहमासे के अतिरिक्त केवल चातुर्मास्य का भी अपने एक पद में उल्लेख किया है। '...वियोगियों के लिए वर्षा काल के कष्टप्रद स्वरूप को ध्यान में रखते हुए कालिदास ने भी 'मेघदूत' का प्रारंभ आषाढ़ मास से ही किया है। धीरे-धीरे यह परंपरा साहित्य में रूढ़ होती चली गई। चूँकि आषाढ़ मास का आर्द्रा नक्षत्र भी पावस के प्रारंभ का नक्षत्र माना जाता है। लोक में महाकवि घाघ की यह उक्ति प्रसिद्ध ही है— 'आवत आदर न दियो जात न दीनो हस्त।/कहें घाघ दोऊ गए पाहुन और गृहस्त।।' यानी जिस प्रकार किसी अतिथि के आने और जाने के समय सम्मान अपेक्षित होता है, उसी प्रकार पावस के आते (आर्द्रा) और जाते समय (हस्त नक्षत्र) जल न मिले तो कृषि नष्ट हो जाती है। ('चढ़ा आषाढ़ गगन घन गाजा। साँजा विरह दुंददल बाजा/अर्द्रा लागि लागि भुईं लेई। मोहिं बिनु पिउ को आदर देई।।') शायद इन्हीं कारणों से बारहमासे में आषाढ़ को प्रथम स्थान देने की परंपरा पड़ी होगी। आचार्य मिश्र ने निष्कर्ष दिया है— 'भाषाविज्ञान के आधुनिक विचारकों का कहना है कि पावस का नाम वर्षा इसीलिए रखा गया है कि वह किसी समय वर्ष के आरंभ में पड़ता था।' जो भी हो किंतु जीवन का आरंभ तो पावस से ही होता है। सावन से ही सुहागिनों का भी संबंध है। (प्रकारांतर से जीवन का...)

ग्रामीण समाज में विवाह के बाद प्रथम सावन को सुहागिन स्त्री अपने मायके में ही व्यतीत करती है। इस प्रकार सहेलियों के मिलन का प्रथम साक्षी सावन ही बनता है। यह प्रथा कब और क्यों पड़ी होगी, इस संदर्भ में प्रामाणिक रूप से कुछ कहना कठिन है ...हाँ, अनुमान जरूर लगा सकते हैं कि चूँकि ग्रीष्म विवाह-संबंध की दृष्टि से अनुकूल है, इसलिए उसके एक-दो महीने बाद विवाहिता अपने मायके आती है...प्रिय साहचर्य की सुखद स्मृतियों को टटोलने के क्रम में...। निश्चित ही स्मृति-पुनरस्मृति के रूप में जीवन के क्रम में सावन और उसके झूले का चलन हुआ होगा। पावस के बहाने व्यक्ति अपने जीवन में उमंग भर लेना चाहता है। ग्रीष्म की तपन के पश्चात् सावन की पवन विशेष लुभावनी लगती ही है। सावन के साथ मेले की भी परंपरा जुड़ गई है। विभिन्न प्रांतों में यह 'सावन का मेला' नाम से ख्यात हो चला है। इसी बीच श्री कृष्ण जयंती भी है। भाद्रपक्ष अष्टमी को यह जयंती हर वर्ष आती है। तो वर्षा के बादल का रंग ही कृष्ण का रंग श्याम बन जाता है। अनायास नहीं कि कृष्ण चरागाह संस्कृति के नायक बनते हैं।

आज पावस ऋतु संकट में है। हमारे भीतर का उल्लास... जल (शर्म.../रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून...) सूखता जा रहा है। आज पावस... वर्षा हमारे भीतर राग नहीं भर पाते...आज वे मात्र हमारे जीवन में जलवायु परिवर्तन के रूप में आते हैं। कहीं इसके पीछे यह कारण तो नहीं रहा कि हमने शताब्दियों से मनुष्य जीवन के मूल प्रश्नों को द्वितीयक तथा द्वितीयक प्रश्नों (नस्ल-सांप्रदायिकता, जाति-वर्ण, अर्थ, सत्ता...) को मूल बना लिया। यानी जीवन के लिए....प्रकृति के लिए...पावस की प्रासंगिकता बची रहेगी। किंतु इसके लिए हमें भी आगे बढ़कर उसका मुक्त हृदय से स्वागत करना चाहिए। आखिर 'प्रकृति न्याय' तो यही है न...

राजकुमार गौतम

विभिन्न प्रकाशन संस्थानों के लिए स्वतंत्र लेखन। प्रमुख पत्र पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित।

संपर्क :

09313636195

raakugau@yahoo.com


# पिताजी की बात अब कोई नहीं सुनता

पिताजी अब बोलते नहीं, फौजदारी करते हुए लगते हैं परिवार वालों को। किसी भी बोले गए वाक्य से मानो युद्धक्षेत्र तैयार और सुसज्जित हो उठता है अब।

घर के माहौल में पिताजी की कही गई हर बात ही जलवायु परिवर्तन कर देती है। भारी प्रदूषण के चलते सबकी आँखों में तीखी मिर्च घुस जाती है। उनके कहन और घरवालों के सुनन की दूरी कदमों में नहीं, प्रकाशवर्षों में अंकित और उपहासित होने लगती है। शब्दों के अर्थ-आशय में फूल और धुआँ इस कदर छा जाता है कि जुबान सारे स्वाद और शील को भूल जाती है।

"आखिर माता रानी ने मेरी प्रार्थना सुन ही ली। हम भी कार वाले हो जाएँगे। किस्तों का क्या है, देखते ही देखते बैंक का सारा कर्ज चुटकी बजाते निकल जाएगा। यह तो मेरी पूजा का प्रसाद है। सच्चे मन से माता रानी की आराधना करती हूँ।" घर की 'बड़ी' अर्थात् माँ ने यह बात कही तो बहू-बेटे ने कृतज्ञ भाव से उनकी ओर देखा।

"मैं एकदम मनचाही कार पर तो हाथ नहीं रख सका, मगर फिर भी अपनी हैसियत से तो बढ़कर ही ली है। अब गाड़ी की पार्किंग, ईएमआई, पेट्रोल, रख-रखाव के साथ ड्राइवर की सेलरी और उसके होली-दीवाली, सालाना बोनस, ओवरटाइम वगैरह करते जोर तो पड़ेगा, मगर आई होप—मैं यह सब इधर-उधर से खींच ही लूँगा।" लायक बेटे ने इस समस्या और समाधान विषय पर ऐसा नपा-तुला बोला मानो कोई डॉक्टर किसी गंभीर बीमार की तीमारदारी पर निकट संबंधियों और नर्स आदि को हिदायतें दे रहा हो।

"पापू, आप लोग मेरी बात भी सुनो। ड्राइवर को बता देना कि मैं रोज-के-रोज गाड़ी से ही स्कूल आऊँगा-जाऊँगा! मेरे दोस्त भी तो जानें कि मैं भी किसी छोटे रईस का बेटा नहीं। ही...ई...ईई!" बच्चा उछलकूद का जीवंत नमूना था।

"हाँ बेटा! मैं तुम्हें लेने-छोड़ने जाऊँगी गाड़ी में। इसी बहाने मेरी भी थोड़ी आउटिंग हो जाएगी।" बहू के स्वर में आत्मविश्वास का उछाल ऐतिहासिक था।

पिताजी के अलावा सब बोल चुके थे। दरअसल वह कुछ बोलने को कसमसा भी रहे थे। यकायक सभी उनकी ओर देखने लगे। कर्ज लेकर कार खरीदना उन्हें भाया न था। विरोधी रहे थे इस मुहिम के। मगर हथियार डालने पड़े। तटस्थ हो जाना पड़ा। कभी-कभार समाज में या अस्पताल में जाना पड़े तो क्या हुआ? लस्टम-पस्टम जाया करते थे, जाते रहते!

सबको अपनी ओर ताकते हुए पाया तो पिताजी घबराकर बोल उठे, "चलो भाई, जैसे तुम लोगों की मर्जी! इस बहाने एक ड्राइवर का परिवार भी पल जाएगा।"

यकायक घर का प्रशांत स्तर बाढ़ के खतरनाक चिह्न को पार कर गया। कोई जेंटलमैन वर्ड तो कभी सुनाई ही नहीं देगा पिताजी की काली जुबान से। जब बोलेंगे तो बदबूदार मुत्ती ही करेंगे। अब, ड्राइवर के परिवार पालन जैसी घुट्टी को हम सबको पिलाना क्यों जरूरी था? पिछले पाँच दशकों से उनके साथ अटकी और घिसटती पत्नी ने ही त्वरित टिप्पणी दी : "बस, इनकी तो अल्लम-गल्लम शुरू हो गई अब! खुद तो कभी साइकिल नहीं खरीद सके और अब बच्चों को नीचा दिखाने में लग गया है यह आदमी। हे माता रानी...!"

'पता नहीं, इस बदशऊर से मेरा पीछा पहले छूटेगा या फिर इसका मुझसे?' पिताजी ने डेढ़ करोड़वीं बार सोचा और हाई ब्लडप्रेशर की एक और गोली लेने की तलाबेली में लग गए।

# बीते दिन

**सीमा 'असीम' सक्सेना**

**शिक्षा :** एम.ए. संस्कृत।

**प्रकाशन :** चार किताबें प्रकाशित दो काव्य संग्रह 'ये मेरा आसमां' व 'सागर मीठा होना चाहता है' दो कहानी संग्रह 'लिव लाइफ' व 'आखिर कब तक'। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में नियमित लेखन।

**सम्मान :** सारस्वत सम्मान, विशिष्ट सरस्वती रत्न सम्मान, विश्व हिंदी संस्थान, 'कल्चरल ओर्गेनाइजेशन कनाडा से सम्मान' व ऑल इंडिया कल्चरल ऐसोसिएशन द्वारा इंटरनेशनल थिएटर फेस्टिवल में प्रतिभाशाली कलाकार का सम्मान।

**संप्रति :** उद्घोषक, ऑल इंडिया रेडियो

**संपर्क :**

seema4094@gmail.com


न जाने क्या सोचकर उसके पैर वहाँ पर ठिठक गए थे और उस बगीचे के, लोहे के बने बड़े-से मुख्य गेट से प्रवेश कर लिया था। घास के ऊपर से गुजरते हुए वह किनारे-किनारे लगे उन पेड़-पौधों को वह निहारने लगी, जो उसे सम्मोहित करते-से लग रहे थे।

उनसे निकलती वही पुरानी खुशबू, तरो-ताजगी, उमंग, उत्साह और प्यार से लबरेज उन क्षणों की याद दिला गए थे, जिन्हें वह चाहकर भी इतने बरसों में एक बार भी नहीं भूली थी।

वे बीते दिन एक-एक कर उसकी आँखों के सामने ठीक वैसे ही घूम गए, जैसे किसी फिल्म की रील चलती है।

थोड़ी-सी हरियाली को पार करके, कुछ आगे बढ़कर दो कमरे बने हुए थे। वे बिल्कुल पहले जैसे ही थे। बस समय की थोड़ी-सी परत उन पर चढ़ने लगी थी। अब वे पहले जैसे नए-नवेले नहीं रह गए थे। रंग-रोगन होने के बाद भी जगह-जगह से उखड़ा पलस्तर समय और मौसम के मार की चुगली कर रहे थे।

वहीं पास में ही माली पौधों में पानी लगा रहा था। वह उसे देख ऐसे चौंक गया जैसे वह उसे पहचान गया हो।

उसे इस तरह चौंकते हुए देख उसने पूछा, "क्यों भइया, ठीक तो हो न?"

"जी, मैं तो ठीक ही हूँ, आप कैसी हैं?"

"हाँ भई, हम भी ठीक हैं। आजकल क्या यहाँ कोई आता-जाता नहीं है?"

वह कुछ न बोला तो उसने फिर पूछा, "आज कोई बच्चा यहाँ खेलता हुआ नहीं दिख रहा?"

"कैसी बातें करती हैं आप भी मैडम जी, इतनी दोपहर में कौन आएगा? वैसे भी अब बच्चे मॉल में जाते हैं कम्प्यूटर, लैपटॉप पर खेलते हैं, यहाँ क्यों आएँगे?"

"चारों तरफ अँधेरा घिर गया था। धूल ही धूल का बवंडर-सा छा गया था। शायद कोई तूफान-सा आ गया था उस दिन, जो उसकी जिंदगी में भी उथल-पुथल मचा गया था। वे सब भागकर उन दोनों कमरों में घुस गए थे, जिसमें माली अपने परिवार के साथ रहता था। जहाँ जिसको जगह मिली, सब वहीं दुबक गए। वह भी कमरे में पड़ी खटिया पर बैठ गई।"

बगीचे के सम्मोहन में वह ऐसे खिंचती चली आई कि उसे समय का ध्यान ही नहीं रहा। उसने घड़ी में देखा, अभी दिन के तीन बज रहे थे।

देखा जाए तो माली सच ही कह रहा था कि आज के बच्चों को यह हरियाली, प्रकृति कहाँ लुभाती है। वे तो कृत्रिमता की ओर भागते हैं और वह ही उनके मन को भाती है, अच्छी लगती है। इसीलिए होटलों और मॉलों में हर समय भीड़-भाड़ मिल जाएगी, परंतु एक बार को बाग-बगीचे तो खाली पड़े मिल जाएँगे।

पहले तो जैसे ही दोस्तों का साथ मिलता, सब निकल पड़ते थे। आसपास के पार्कों में पिकनिक मनाने, मस्ती करने, हरियाली के बीच। फूलों की मन को मोहने वाली खुशबू के बीच। पहले इस छोटे शहर में ये मॉल, लैपटॉप या फिर कम्प्यूटर कहाँ थे!

पेड़ों पर चढ़ते हुए, लटकते हुए, आम और अमरूदों को माली की नजर बचाकर तोड़ते हुए, कब बचपन जवानी में तब्दील हो जाता था, पता ही नहीं चलता था।

उसे वह दिन आज भी याद है, जब वह पहली बार स्कूल की तरफ से टीचर और क्लास के बच्चों के साथ यहाँ आई थी। उसे इस पार्क ने इतना सम्मोहित किया कि जब भी उसे मौका मिलता, तो वह अपने आस पास के दोस्तों के साथ यहाँ आना पसंद करती थी।

सब यहाँ आते, मस्ती करते। फिर तो यहाँ आना उनके रूटीन में ही शामिल हो गया था। एक सिलसिला-सा बन गया था। उसे वह दिन कभी नहीं भूलेगा, जब वह अपने कॉलेज के दोस्तों के साथ यहाँ आई थी और शायद उस दिन मिली खुशी की तलाश में भटकती हुई आज फिर यहाँ आ गई थी। वो खुशी जो अधूरी ही रह गई थी। कहाँ हो पाई थी पूरी। उससे छीन ली गई थी या उसने स्वयं उसे पाने की कोशिश ही नहीं की थी, न जाने कैसे सब कुछ बदल गया था।

आज करीब दस सालों के बाद किसी डोर से बँधी खिंची चली आई थी।

इतने सालों में यहाँ सब कुछ बदल गया था, या फिर वह खुद ही बदल गई थी, या उसके मन में ही सूनापन समा गया था, जो उसे यहाँ एकदम से शांति छाई हुई लग रही थी। मात्र पक्षियों की कलरव ध्वनि ही आ रही थी। वह भी उतनी नहीं, जितनी पहले होती थी।

पहले तो हर डाल और हर शाख पर पक्षियों का जमघट लगा रहता था। काँव काँव, चीं-चीं। न जाने कितनी मनमोहक और सुरीली आवाजों से पूरा बगीचा गूँजता रहता था। बच्चों के शोर-शराबे के बीच माली का डंडा लेकर डाँटते हुए दौड़कर आना और उन बच्चों का खिलखिलाते हुए दूर भाग जाना।

उसे वह दिन कभी नहीं भूलेगा, जब वह इस बगीचे में आई थी। वह शायद आखिरी बार ही था, उसके बाद तो कभी आना ही नहीं हुआ। उस दिन तो कॉलेज के सभी दोस्त साथ थे।

लगभग पाँच दोस्तों का समूह था, जिसमें कमल भी शामिल था, उसके कॉलेज का एक लड़का, जो सीनियर था। ममता की क्लास में पढ़ता था और ममता उसकी बचपन की सहेली... वह हमेशा उसके साथ ही आती थी। ममता ने उसका कमल से वहीं पर परिचय कराया था— "यह है मेरा भाई जैसा दोस्त कमल।"

जब उसने उसकी तरफ देखा, तो कमल ने मुस्कराकर अपना हाथ आगे बढ़ा दिया था। वह भी जैसे ही हाथ मिलाने को आगे बढ़ी तो ममता ने टोक दिया था, यह कहते हुए— "हाँ-हाँ, मिलाओ हाथ।"

इसे सुन वह संकोचवश चंद कदम पीछे हट गई, परंतु उसका मन! वह तो दस कदम आगे बढ़ गया था। अभी उन लोगों की मस्ती शुरू भी नहीं हो पाई थी कि भयंकर आँधी आ गई।

चारों तरफ अँधेरा घिर गया था। धूल ही धूल का बवंडर-सा छा गया था। शायद कोई तूफान-सा आ गया था उस दिन, जो उसकी जिंदगी में भी उथल-पुथल मचा गया था। वे सब भागकर उन दोनों कमरों में घुस गए थे, जिसमें माली अपने परिवार के साथ रहता था। जहाँ जिसको जगह मिली, सब वहीं दुबक गए। वह भी कमरे में पड़ी खटिया पर बैठ गई।

उसका शरीर ठंड से काँपने लगा था और मुँह, धूल से कसैला और किरकिरा लग रहा था। ऐसे ही बैठे-बैठे घंटा भर कब निकल गया, उसे पता ही नहीं चला, परंतु आँधी अभी भी रुकने का नाम नहीं ले रही

थी। बल्कि उसकी तीव्रता का अहसास तो अंदर कमरे में बैठकर भी हो रहा था। पेड़ों के गिरने की आवाजें आँधी के शोर को और बढ़ा रही थीं। अँधेरे की वजह से किसी को कहीं कुछ दिख ही नहीं रहा था।

उसे डर भी लगने लगा था। अगर ऐसे ही रहा तो वह घर कैसे पहुँचेगी? घर वाले खामखाँ उसे लेकर परेशान हो रहे होंगे। आज तो घर पर बताकर भी नहीं आई थी।

"क्या हुआ, ठंड लग रही है?"

"हाँ।" उसके मुँह से अनायास निकल गया।

अब वह उस आवाज को पहचानने की कोशिश करने लगी। वह कमल ही था। कमल ने उससे कहा, "तुम यह चादर लपेट लो।" और चादर उतारकर उसे उढ़ा दी थी। तब भी कहाँ कम हुई थी ठंडक। ऐसे में कमल ने अपने हाथ आगे बढ़ाकर उसके

जब उसका बदन ठंड से काँप उठा, तो उसने पलंग पर बिछी चादर को उठाकर ओढ़ने के लिए खींचना चाहा! पर शायद कोई और भी वहाँ पर बैठा था और चादर न खिंच सकी, तो उसने अपनी चुन्नी को कसकर अपने बदन से लपेट लिया था, लेकिन ठंड की वजह से उसके मुँह से कुछ अजीब-सी आवाजें आने लगी थीं।

हाथों के ऊपर रख दिए थे। वह उन गर्म हाथों में ही कुछ गर्माहट खोजने लगी थी, किंतु उसके ठंडे हाथों की ठंडक, उन हाथों तक भी पहुँच गई थी। अब कमल के हाथ भी पहले जैसे उतने गर्म नहीं रह गए थे। इसी तरह पूरे तीन घंटे गुजर गए।

अब आँधी कुछ हल्की पड़ गई थी, लेकिन अँधेरा वैसा ही था, क्योंकि रात के करीब आठ बज रहे थे। लाइट तो आँधी के आते ही चली गई थी। अब कल सही होने पर ही आएगी, क्योंकि आँधी में लाइट के तार टूट गए होंगे।

वह कमल का हाथ पकड़े-पकड़े ही बाहर आ गई थी। दूर-दूर पर हल्की-फुल्की रोशनी दिख रही थी। उसी के सहारे वह घर तक पहुँची। सब दोस्त कब और कैसे गए, पता ही न चला। घर पहुँचकर उसने राहत की साँस ली।

कमल बाहर से ही छोड़कर चला गया था। घर में सब लोग उसकी चिंता कर रहे थे। वह सीधे अपने कमरे में आ गई थी।

माँ चाय लेकर कमरे में आईं, "तुम कहाँ थी, इतने भयंकर आँधी-तूफान में, हम सब कितने परेशान थे।"

"माँ, हम लोग पार्क में ही फँस गए थे। जैसे ही आँधी हल्की पड़ी, सीधे घर आ गए।"

"चलो अब चाय पी लो, फिर मुँह-हाथ धोकर खाना खाने नीचे आ जाना।"

वह चाय पीकर कंबल ओढ़कर लेट गई। बाहर अभी भी ठंडी हवाएँ चल रही थीं, लेकिन अब वह हवाएँ उसके कानों में कुछ सरगोशियाँ-सी कर रही थीं और आँखों में कमल की छवि घूम रही थी। कितना अच्छा है वह, तभी तो एक कमरे में तीन घंटे एक साथ गुजारने के बाद भी एक अनजान बनकर ही बैठा रहा। उसके मन में एक मीठी-सी कसक जाग उठी थी कमल के प्रति।

यह सब सोचते हुए न जाने कब उसकी आँख लग गई और वह सो गई। सपने में भी वही सब कुछ दिख रहा था, जो उसके मन में था। अगले दिन जब वह कॉलेज पहुँची, तो उसे सब कुछ नया व बदला-बदला हुआ-सा लग रहा था। पहले जैसा कुछ भी नहीं था। सच ही है, हमारे देखने का नजरिया ही तय करता है, हमारे आसपास के माहौल को। सब कुछ पहले जैसा होने के बाद भी आज उसे सब कुछ अलग लग रहा था।

तभी उसे सामने से कमल आता दिखा। वह ब्लू जींस और व्हाइट टी शर्ट पहने

हुए था। इन कपड़ों में उसका चेहरा कितना निखरा हुआ लग रहा था। हल्की-सी दाढ़ी उसके चेहरे पर बहुत फब रही थी।

कमल ने उसके करीब आकर उससे पूछा, ''घर में कल सब ठीक था न! कोई बात तो नहीं हुई?''

''हाँ।'' उसने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

''तुम यूँ ही डर रही थीं।''

........

''मैंने कहा था, वह लोग समझ गए होंगे।''

........

''अरे! तुम कुछ बोल क्यों नहीं रहीं?''

उसने हल्का-सा मुस्करा भर दिया।

''शायद तुम्हारा मुझसे बोलने का मन नहीं है, मैं जा रहा हूँ।''

''नहीं, नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है।'' उसे जाते देख वह एकदम से बोल पड़ी थी।

''तो फिर क्या बात है?''

''क्या कहूँ?''

''कुछ भी, जो तुम्हारा मन करे।''

''जी, क्या बात करूँ?'' वह संकोच-वश बोली।

''जो मैं पूछ रहा हूँ या जो तुम्हारे मन में है।''

''क्या?''

''तो तुमने कुछ सुना ही नहीं।''

वह सुन ही कब पाई थी। वह तो उसके करीब आने भर से ही कहीं खो गई थी।

अब वह दोनों अक्सर साथ दिखते थे। कॉलेज में तो यह बात फैल चुकी थी। न जाने कब सड़क, रास्ते और गलियों से होते हुए उसके घर तक भी पहुँच गई थी।

जब यह बातें पापा के कानों तक पहुँचीं तो उस दिन उसके पापा ने पहली बार पास बिठाकर उसे समझाते हुए पूछा था, ''मैं यह सब क्या सुन रहा हूँ?''


काश! वह सुन लेती, उसकी बात मान लेती, एक बार मिल ही आती या फिर पापा को ही बता देती। कुछ तो विरोध करती। उसने तो पहले ही सारे हथियार डाल दिए थे और पापा की बात का मान रखते हुए उसने कमल को छोड़ जतिन से विवाह कर उसका घर बसा दिया था। इतने बरस गुजरने के बाद भी वह न उसे भूल सकी थी और न ही उसके निश्छल प्यार को।


वह पापा से कुछ बोलती, उससे पहले ही वे पूछ बैठे, ''और तुम क्या चाहती हो? अगर शादी, तो फिर ध्यान से सोच लेना। जीवन बहुत लंबा होता है। केवल प्यार, मोहब्बत से जिंदगी की गाड़ी नहीं चलती।''

बस इतनी-सी बात कहकर वह चले गए थे। वह क्या सोचेगी? उसने तो पहले ही सोच रखा था। पर वह उस दिन कुछ कह नहीं सकी थी और उसकी चुप्पी को पापा ने उसकी शादी के लिए 'हाँ' समझ लिया था। उसका रिश्ता एक इंजीनियर लड़के से तय कर दिया गया था। कोई भी तो प्रतिरोध न कर पाई थी वह।

एक महीने के अंदर ही शादी-ब्याह निपटा दिया गया था। उसके एग्जाम भी नहीं हो पाए थे। पापा ने तो शादी करके अपनी जिम्मेदारियों से पल्लू झाड़ लिया था।

शादी से दो दिन पहले कमल का एक मैसेज उसे मिला था।

'तुम एक बार उसी पार्क में आ जाओ, सिर्फ दो मिनट के लिए।'

लेकिन शादी वाले घर से निकलकर वह जा ही न सकी थी। चारों ओर रिश्तेदारों, मेहमानों और परिवार वालों का पहरा जो था। वह मायके से विदा होकर आ गई थी, एकदम-से नए परिवेश में, पुराना सब कुछ भुलाकर, लेकिन वह कभी भुलाया जा सकने वाला न था, जो उसने भोगा था, महसूस किया था और जो बिल्कुल पवित्र था। परंतु वह उसका मान न रख पाई। उसके प्यार को उसने मात्र मजाक समझ लिया था।

जब एग्जाम देने के लिए कॉलेज में गई थी, तो उसे पता चला कि उसकी शादी वाले दिन ही कमल ने नींद की गोलियाँ खा ली थीं। वह तो डर ही गई थी। क्या उसने कमल की जान ले ली? बिल्कुल मासूम इंसान की, आखिर उसकी गलती क्या थी? इतने सालों के बाद वही सब आज दिमाग में घूम रहा था।

काश! वह सुन लेती, उसकी बात मान लेती, एक बार मिल ही आती या फिर पापा को ही बता देती। कुछ तो विरोध करती। उसने तो पहले ही सारे हथियार डाल दिए थे और पापा की बात का मान रखते हुए उसने कमल को छोड़ जतिन से विवाह कर उसका घर बसा दिया था। इतने बरस गुजरने के बाद भी वह न उसे भूल सकी थी और न ही उसके निश्छल प्यार को।

तभी तो आज जब वह इधर से गुजर रही थी, तो उसके कदम अपने आप ही उधर बढ़ गए थे, जहाँ आकर उसके जीवन में उथल-पुथल मच गई थी। तब शायद कम थी किंतु अब बेतहाशा बढ़ गई थी।

मानव मन ऐसा ही तो करता है, जब चीजें सामने होती हैं, तो उनकी इज्जत नहीं करते, किंतु जब वह हाथ से निकल जाती हैं, तो हम तमाम उम्र उनकी खोज में निकाल देते हैं। उन्हें पाने को भटकते रहते हैं और व्यर्थ ही अपने समय को बर्बाद कर देते हैं।

अगर समय रहते चेत जाएँ और अवसरों को पकड़ लें, तो जिंदगी भर के पछतावे से तो बच ही जाएँगे।

आज वह उन पौधों को सहलाती और वृक्षों को टटोलती घूम रही थी। शायद इन्हीं से उसका कोई सुराग मिल जाए, जिसे उसने अपनी गलती से ही खो दिया था। उसे इस तरह कुछ ढूँढ़ते देख माली उसकी तरफ आता हुआ बोला, "बहन, क्या ढूँढ़ रही हो?"

"कुछ नहीं।"

"तो इस तरह पेड़-पौधों को सहलाने का मतलब?"

"बड़े शहरों में इतनी शांति और हरियाली तो मिलती नहीं न, तो मन यहाँ आकर रोमांचित हो उठा।"

"एक बात बताऊँ?"

"हाँ, बोलो।"

"अभी कुछ दिनों पहले एक व्यक्ति यहाँ आए थे, वह भी कुछ खोजते-से दिखे थे इन पेड़-पौधों के बीच।"

"अच्छा! कौन थे?"

"मैं जानता तो नहीं, हाँ! विदेश से आए थे।"

फिर कुछ याद करता हुआ बोला, "हाँ, जाते समय एक चैक दे गए थे।"

"उस पर कोई नाम तो होगा।"

माली विचारमग्न मुद्रा में आ गया जैसे याद करने की कोशिश कर रहा हो, फिर सिर हिलाते हुए बोला, "याद आया, 'कमल' नाम था, 'कमल कुमार'।"

"क्या? कमल?" वह चौंकते हुए बोली।

"आप जानती हैं उन्हें?"

कोई जवाब न देकर उल्टा माली से पूछने लगी, "कैसे लग रहे थे? वह अकेले थे या साथ में कोई और भी था?"

"हाँ, एक बच्ची थी गोद में, करीब दो साल की होगी। बहुत खूबसूरत थी, बिल्कुल अंग्रेज लग रही थी, मैंने पूछा भी, कितनी प्यारी बच्ची है! आपकी है न? तो उन्होंने सिर हिलाकर 'हाँ' में जवाब दिया था।"

यह सुनकर वह जी उठी थी, आज तक पल-पल मरती आई थी।

वह सुखी है... और विवाहित भी। उसने यह सब सुनकर राहत की साँस ली थी। जो आत्मग्लानि उसे थी, वह कुछ हद तक कम हो गई थी। वह जान गई थी, समझ गई थी कि आखिर चलते रहने का नाम ही तो जिंदगी है और जीवन ...वह न तो कभी किसी के लिए रुका है, न ही रुकेगा।

वह उसके बारे में बहुत कुछ जानना चाहती थी... पर कैसे? माली से भी कितना पूछ सकती थी? इतने बरस गुजरने के बाद सहेलियों से भी कोई कॉन्टेक्ट नहीं रह गया था। वे सब शादी होकर न जाने किधर बसी होंगी।

कमल के दोस्त तो होंगे, लेकिन वह उन्हें कहाँ ढूँढ़ेगी, और ढूँढ़ भी लिया तो क्या पूछेगी?

इसी उधेड़बुन में वह उल्टे पाँव लौट पड़ी थी। लेकिन कमल आज भी उसे उतना ही याद करता है जितना कि वह, क्योंकि वह जान गई थी कि........

'दिल को दिल से राह होती है'

यह कहावत आज उसे पूरी तरह सही लग रही थी। तभी तो मौका लगने पर वह भी उसे यहाँ याद करके ही आया होगा। न जाने कितनी ही बातें उसके दिमाग में उथल-पुथल मचाए हुई थीं। जब वह बगीचे के गेट तक पहुँच गई तो उसे ध्यान आया कि वह भी माली को कुछ दे आती। उसने वहीं से माली को आवाज लगाकर पर्स में से एक हजार रुपये निकालकर दिए थे, क्योंकि अब उसकी हिम्मत नहीं थी दोबारा से बगीचे में जाने की।

पैसे देते हुए वह माली से कहना नहीं भूली थी कि, "भइया, यह तुम्हारे लिए, तुम इस बगीचे की ठीक से देखभाल करना।"

माली चौंककर देख रहा था कि आज जब लोग प्रकृति को बिसराकर कृत्रिमता का जीवन जीते हैं, वहीं कुछ लोग ऐसे भी हैं जो न सिर्फ पेड़-पौधों को प्यार करते हैं बल्कि उनकी हरियाली बनी रहे, इसकी परवाह भी करते हैं।

लेकिन वह माली क्या जाने कि वे मन के किसी न किसी कोने से प्रकृति से जुड़े हुए हैं, और इस बगीचे से, इस हरियाली से उन लोगों के न जाने कितने जज्बात, कितने अहसास जुड़े हुए हैं। यह अनोखे प्यार का अहसास ही तो था, जिसे ढूँढ़ते-से वे दोनों एक बार फिर यहाँ चले आए थे। इतने बरसों के बाद भी नहीं भूले थे उस प्याररूपी अहसास को क्योंकि अहसास का नाम ही तो प्यार है और उसे दूर रहकर व बिना एक-दूसरे से कहे भी जीवित रखा जा सकता है, क्योंकि प्यार तो अजर-अमर है, वह हमेशा जिंदा रहता है लोगों के मन में, दिल में। उसके भावुक हो आए मन ने आँखें छलका दी थीं और होंठों पर एक स्मित मुस्कान खिला दी थी।


## 'पुस्तक संस्कृति' के वार्षिक ग्राहक बनें

त्रैमासिक पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क 125/- रु. है। पत्रिका का सदस्यता शुल्क भेजने के लिए बैंक का विवरण निम्नांकित है :

CANARA BANK, Branch: Vasant Kunj, New Delhi 110070.
A/C No.: **31591010003159**

इसके अलावा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के पक्ष में देय चेक, ड्राफ्ट या धनादेय भी भेजा जा सकता है।

शुल्क भेजने के पश्चात् कृपया फोन अथवा पत्र द्वारा सूचना अवश्य दें।

# काले मेघा...

**शशिभूषण सिंहल**

(7 अगस्त, 1933)

समीक्षक और कथाकार

**प्रकाशित पुस्तकें** : दुनिया न माने, युगदृष्टा शिवाजी, चाणक्य और चंद्रगुप्त, नमक के लिए आदि।

**संप्रति** : स्वतंत्र लेखन।

**संपर्क** :

7428338095


प्रति वर्ष मई-जून में धरती तपती है, तो वर्षा आती है। बारिश की राहत की प्रतीक्षा रहती है, यदि वह मुँह फेर गई तो आकाश में मँडराते काले-कजरारे बादल निरर्थक लगते हैं। —यह चर्चा दो बुजुर्ग मित्रों के बीच हो रही थी; महेन्द्र और सुनील। महेन्द्र मूलतः औरंगाबाद (महाराष्ट्र) के हैं और सुनील आगरा (उत्तर प्रदेश) के। दोनों संयोगवश उत्तर दिल्ली की एक साफ-सुथरी शांत कॉलोनी में आ बसे हैं। दोनों के बेटे यहाँ कार्यरत हैं। बुढ़ापे में इन्हें इधर ही आना था। प्रातः पार्क में घूमते हुए दोनों की भेंट हुई और मित्रता हो गई।

महेन्द्र काव्यप्रेमी हैं और सुनील का झुकाव राजनीति की ओर रहा है। महेन्द्र ने एक दिन बैंच पर बैठकर मित्र को मध्ययुग के कवि तुलसीदास के 'रामचरितमानस' से वर्षा-वर्णन की चौपाइयाँ सस्वर सुनाईं— 'बरषाकाल मेघ नभ छाए। गरजत लागत परम सुहाए।। बरषहिं जलद भूमि निअराएँ। जथा नवहिं बुध विद्या पाएँ।।' आदि। पूरा पृष्ठ इस वर्णन में उन्होंने लिया है। आगे बताया, तुलसी ने वर्षा का वर्णन करते हुए उसके माध्यम से मनुष्य को निरंतर शिक्षा देने पर ध्यान रखा है।

आधुनिक युग में कवि ने प्रकृति का स्वतंत्र रूप में वर्णन किया है। उदाहरण स्वरूप उन्होंने कवि 'तरुण' की वर्षा-वर्णन की ये पंक्तियाँ सुनाईं :

*'वे बादल जिनसे धरती में धन की वर्षा होती,*
*खेतों में बरसाते जो हीरे, माणिक, मोती,*

*बरस रही है सूरज, चाँद सितारों की जो ज्योति,*
*वह सब, सब के लिए, एक की ही अब नहीं बपौती,*
*प्रजातंत्र का युग आया यह सहज सत्य समझाने,*
*प्रजातंत्र भारत की जय हो-गूँज उठे अब गाने।'*

काव्य-पाठ के बाद महेन्द्र के होंठों पर फीकी मुस्कान थिरक गई। बोले– "क्या सचमुच कवि का सपना आज भारत की धरती पर उतर पाया है?"

सुनील बाबू ने गंभीर स्वर में कहा– "नहीं, बिल्कुल नहीं। हालत जो अंग्रेजों के जमाने में थी, वह आज भी लगभग वैसी ही है। मुझे याद है, मैं बालक था। आगरा में रहता था। सूखा पड़ने के दिनों हमारी गलियों में राजस्थान से भटके निर्धन जन दुहाई लगाते चलते थे– 'काले मेघा पानी दे। पानी दे। पानी दे, गुड़धानी दे।' उत्तर में लोग उन्हें पानी पिलाते थे, उनकी बोतलें जल से भर देते थे और खाने को भी कुछ देते थे। मैं सोचा करता था, अंग्रेजों का राज है, इसलिए यह मारामारी है। इतना बड़ा देश, क्या कोई व्यवस्था नहीं हो सकती? हम लोगों ने भूगोल में पढ़ रखा था, भारत सूखे या बूढ़े का देश है। बड़े होने पर समझ में आया, जल-संसाधनों का सही उपयोग न होने के कारण यह स्थिति बदली नहीं है। अपनी सरकारें आ गई हैं, उनका ध्यान कहीं और है। आम आदमी निरर्थक कठिनाइयों के भार तले दबा पड़ा है। अब भी कहीं अतिवृष्टि और कहीं अनावृष्टि। जहाँ जो जैसा है, वह झेले।"

महेन्द्र - तुलसीदास की फिर याद आती है। वे कह गए हैं : 'सकल पदारथ हैं जग माहीं। करमहीन नर पावत नाहीं।' कुछ करो भाई। जुगत लगाओ सूखे इलाकों में पानी लाने की। कोई नहर लाओ वहाँ, और कुछ नहीं तो रेलगाड़ी से वहाँ पानी पहुँचाओ। लातूर औरंगाबाद से बहुत दूर नहीं। वहाँ गरमी का कहर और पानी की प्यास। इस बात को लेकर जोरों से शोर मचाया मीडिया ने। अदालत ने सरकार को चेताया, तब उसकी आँखें खुलीं। मालगाड़ी से वहाँ पानी पहुँचाने की व्यवस्था हो रही है।

मैं अपने मीडियाकर्मी मित्र के साथ लातूर हो आया। वह अपनी जन्मभूमि है। मन में कौतूहल था और कुछ सेवाभाव भी। जाकर घूमा। मित्र से बिछड़कर दूर एक पतली-सी गली में जा निकला। एक स्त्री दिखी, रही होगी कोई पैंतीस-चालीस की। कपड़े-लत्तों से गरीब परिवार की दिखती थी। चेहरा सूखा। गोद में छोटी बच्ची, दो बरस की। प्यास के मारे छटपटाती। माँ के हाथ में गिलसिया पानी से आधी भरी। उसने बच्ची के मुँह में धीरे-धीरे पानी टपकाया। गिलसिया खतम। बच्ची ने अकुलाकर फिर मुँह फैलाया। माँ बेचारी क्या करे? उत्तर में उसने आँसू टपका दिए। यह बेबसी देख मैं बेचैन। क्या करूँ? क्या कुछ कर भी सकता हूँ? चारों ओर खुश्की, विकट गरमी और ऊपर हू-हू करते अंधड़ के थपेड़े। सूझा, दो प्यासों की बेचैनी क्या मेरी प्यास से बढ़कर है। मैंने अपने खुश्क होंठों पर जीभ फेरी, और हाथ की पानी भरी बोतल स्त्री की ओर बढ़ा दी। मुँह से निकला– "बहन, सँभालो।" चौंककर उसने मुझे देखा और मेरी ओर हाथ बढ़ा दिया। उसकी आँखों में जो मौन आभार उभरा, वह निरीह चितवन आज भी मेरी आँखों में है।

## 2.

अगले दिन मित्र मिले। सुनील ने सन् 1950 का वर्षा विषयक अपना अनुभव सुनाया। अनुभव क्या, हम भारतीयों की मानसिकता का एक व्यंग्य-चित्र। चित्र यों था : आगरा में मौसम की पहली वर्षा हुई। भीषण गर्मी पड़ने के कारण वर्षा की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा थी। पहली वर्षा ही जोरदार रही। सभी ने मुक्त हृदय से उसका स्वागत किया। अभी वह खुशी ध्यान से उतरी न थी कि दिल्ली में यमुना में पानी चढ़ गया। दिल्ली वाले बाढ़ का प्रकोप जैसे-तैसे झेल गए। फिर बारी आई मथुरा की। यमुना किनारे का बाजार पानी में कई दिन तक डूबा रहा। वहाँ से निपटे। अब अधिक बढ़-चढ़कर यमुना ने आगरा पर धावा बोला। नगर का यमुना किनारे वाला खंड दूर-दूर तक जलमग्न हो गया। रास्ते और बाजार बंद हुए ही, किनारे के गाँवों में भगदड़ मच गई। जिसके जहाँ सींग समाए, वहाँ जा छिपा। तबाही मच गई। यमुना किनारे आगरा की बड़ी बस्ती बेलनगंज है। इसमें बड़े-बड़े व्यापारी रहते हैं। गोदामों में पानी भरने लगा। व्यापारियों को गोदाम खाली करने पड़े। सीने की ऊँचाई तक खड़े पानी में दूर तक गुजरकर गोदामों से माल की बोरियाँ उठाकर ठेलों पर लाद, अन्यत्र सुरक्षित स्थान पहुँचाने का काम चला। इसके लिए मजदूरों के रेट बढ़ गए। साधारण समय में एक बोरी की ढुलाई का रेट अठन्नी था। अब मजदूर क्या लेंगे? बहुत लेंगे रुपया-दो रुपया, पाँच रुपये। कुछ

> **समाचार पत्रों को छापने का मसाला मिला। बाढ़ की तबाही के समाचार कई दिनों से छप रहे थे। अब उनकी चर्चा करते हुए, बेलनगंज में बोरियों की ढुलाई के नए-नवेले रेटों का ब्योरा छपा। व्यापारी वर्ग की पीड़ा से सरकार का आसन हिला। राजधानी लखनऊ में बैठे उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री जी ने विशेष चिंता अनुभव की। कुछ तो होना ही चाहिए। सुनील आगरा क्षेत्र से चुनकर आया था, मंत्री था। उसे वहाँ का दौरा करने और राहत कार्य पर दृष्टि रखने का आदेश हुआ।**

परिस्थिति की कठिनाई और कुछ मजदूरों की मनमानी। रेट सुरसा की भाँति मुँह फैलाकर कहीं से कहीं जा पहुँचे। गोदामों में रखी मेवों, मसालों, इलायची आदि की बहुमूल्य बोरियों को उठाकर सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने का प्रति बोरी का भाव तीस-बत्तीस रुपये का हो गया। व्यापारी मरते, क्या न करते। उन्होंने माथा ठोका। जमाने को कोसा और लूट के भाव बोरियाँ ढुलवाईं।

समाचार पत्रों को छापने का मसाला मिला। बाढ़ की तबाही के समाचार कई दिनों से छप रहे थे। अब उनकी चर्चा करते हुए, बेलनगंज में बोरियों की ढुलाई के नए-नवेले रेटों का ब्योरा छपा। व्यापारी वर्ग की पीड़ा से सरकार का आसन हिला। राजधानी लखनऊ में बैठे उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री जी ने विशेष चिंता अनुभव की। कुछ तो होना ही चाहिए। सुनील आगरा क्षेत्र से चुनकर आया था, मंत्री था। उसे वहाँ का दौरा करने और राहत कार्य पर दृष्टि रखने का आदेश हुआ।

उमसता तीसरा पहर, धुँधला आकाश, चारों ओर गँदले पानी के रेले। सुनील साथियों के साथ, जैसे-तैसे यमुना पुल के पास पहुँचा। वह देखना चाहता था, कितनी नावों का प्रबंध है और राहत का काम कैसा चल रहा है। सामने नजारा यह आया : फेन उगलती, गँदली यमुना, छाती ठोककर दूर-दूर तक फैल गई है। आओ रोको, दम हो जिसमें उसे रोकने का। रोकेगा तो क्या, पहले बचो उसकी बढ़ती चपेट से, चारों ओर वेग से उठते-गिरते पानी के थपेड़ों पर थपेड़े। थपेड़े ललकार रहे हैं, हटो, बढ़ने दो। खबरदार, जो कोई बीच में आया। ऐसा फेंकेंगे, कोई हाल पूछने वाला नहीं मिलेगा।

खैर, सुनील ने देखा, नदी किनारे कुछ नावें थीं। राहत का काम भी कर्मचारी बस रहते कर रहे थे। उसके वहाँ पहुँचते ही बिजली का-सा असर हुआ। हर व्यक्ति हाथ का काम छोड़, उधर खिंच आया। आसपास के कार्यकर्ता उसके आगमन की सूचना पा दौड़े-दौड़े पहुँचे। खासी भीड़ जुड़ गई। नारे लगने लगे— 'सुनील उपाध्याय, जिंदाबाद।' 'उपाध्याय जी, जिंदाबाद।' एक चौड़ा- चकला नेतानुमा अधेड़ आयु का व्यक्ति विशेष सक्रिय था। उछलता-कूदता पाजामा मोड़कर ऊँचा किए, ध्यानमग्न, अधमुँदी आँखों से दोहराए जा रहा था— 'उपाध्याय जीऽऽ।' उत्तर में नारे लग रहे थे— 'जिंदाबाद, जिंदाबाद।' सुनील प्रतीक्षा में था, यह कार्यक्रम निपटे तो काम की बात हो। उसे ठिठका देख भक्तों ने समझा, देवता प्रसन्न हुए। उन्होंने स्वागत का दौर दूना किया। अगुआ नेता महाशय झूम-झूमकर कभी द्रुत और कभी विलंबित लय में नारे लगाने में ऐसे जुटे, उन्हें होश न रहा। दो ही आवाजें गूँज रही थीं— 'उपाध्याय जी', 'जिंदाबाद-जिंदाबाद।'

सुनील नारों के इस रेले से धक्का खा मन में सिकुड़ गया। उसका नाम सुनील कुमार पर्याप्त है। ये उपाध्याय जी कहाँ से आ कूदे? जाति का पुछल्ला कभी बचपन में,

अनजाने शौक में, उसने नाम से बाँध लिया था। अच्छा गले पड़ा। अब वह इसका प्रयोग न कहीं करता है, न करना चाहता है; ये भले आदमी कहाँ से गड़ा मुरदा उखाड़ लाए और मेरे सिर पर लाद-लादकर उछल रहे हैं। क्या ये मुझे महज मनुष्य के रूप में पहचानते तक नहीं। मन में आया, गलती गलती है। बचपन में हुई तो क्या! जैसा करो, वैसा भरो। लगता है ये अक्ल के सिकंदर उसे उपाध्याय के रस्से से बाँधकर ऐसा घसीटेंगे कि सारी दुनिया से दूर जा पड़ेगा।

इससे कहीं ज्यादा भद्दा उसे लग रहा था, नारों का अखंड क्रम जो चुकने का नाम नहीं लेता था। आखिर ऐसा क्या अजूबा हो गया? एक स्थानीय व्यक्ति मंत्री-रूप में यहाँ आ पहुँचा, उसे कुछ जानने-समझने दें, कुछ करने दें। इनके लिए उसका आगमन-मात्र चरम उपलब्धि है। ऐसा भावावेश क्यों? गुलामी करते-करते हम उसका आगमन मात्र चरम उपलब्धि मान बैठे हैं। सत्ता-सुख क्या अंतिम देन है? सत्ताधारी को निकट देख ऐसे विह्वल हो उठते हैं कि आगा-पीछा नहीं समझता। राष्ट्रव्यापी कुंठा की यह कैसी लीला, सचमुच अद्भुत। सुनील ने हाथ जोड़-जोड़कर जैसे-तैसे लोगों को चुप कराया। खीज और लज्जा से वह जकड़-सा गया। नेता भाई ने न जाने कहाँ से कुछ औरतें जुटा लीं। वे थाली में आरती का सामान ले आईं। उसकी आरती उतारी गई। फिर लंबा लोकगीत चला। एक सींकिया नौजवान गले में ही माइक रखते थे, कहीं से मेज लाए और उस पर खड़े होकर लगे देने भाषण। सुनील ने सोचा, यहाँ क्या आया, खासा तमाशा बन गया। मन में आया, यह स्वागत-भाषण रुकवा दे। फिर संकोच आड़े आ गया। ये लोग यही सोचेंगे न, मंत्री क्या हो गए, सीधे मुँह बात नहीं करते। फिर बोलते नेता को रोक बैठने के माने हैं भूखे शेर के आगे से उसका शिकार घसीट ले जाना। नाहक, चख-चख हो जाएगी। सुनील निढाल हो गया। कर लो भैया अपने मन की।

चिढ़ना छोड़कर उसने स्थिति में रुचि ली। नेताजी ने उसके स्वागत में जो कुछ कहा, वह भाषण से बढ़कर एक साँचा था, जो प्रशंसा के लेबिल रूप में किसी भी बड़े आदमी पर मजे से चिपकाया जा सकता था। भाषण में पहले आजादी की लड़ाई और गाँधी जी की देन का बयान हुआ। फिर आगरा नगर के स्वतंत्रता-संग्राम में योगदान का उल्लेख हुआ। बाद में सुनील का व्यक्तित्व और कृतित्व आया। व्यक्तित्व में बताया गया, उसका परिवार पीढ़ियों से देशसेवी रहा है, उसने स्वयं न जाने कितनी बार ब्रिटिश पुलिस की लाठियाँ खाईं, अनशन किए, जेल पर जेल गया। उसे विशेषण प्राप्त हुए— सेनानी, अग्रणी, वरिष्ठ जननायक, कर्मठ, अजर-अमर और न जाने क्या-क्या। सुनील के मन में दो ही शब्द गूँजते रहे— नेता, अभिनेता!

यह कांड समाप्त होना, न होना बराबर रहा। कर्मचारियों की देख-रेख करने वाले कोई सरकारी अधिकारी भी इस समय मंत्री महोदय के आगमन के कारण उपस्थित हुए थे। नेतानुमा। वे पीछे क्यों रहते? हैट किसी को सौंप मेज के मंच पर जा चढ़े। नए खिलाड़ी जान पड़ते थे। उच्चारण अंग्रेजों जैसा, शैली अंग्रेजी। बोले हिंदी में। मिनिस्टर साहब के काइंड विजिट से जो ऑनर और प्लेजर उन्हें प्राप्त हुई और उनके कुलीग्स को, उसकी फीलिंग वे कैसे कनवे करें। उन्होंने पहले अपनी सर्विसेज का रिकॉर्ड मेंशन किया, फिर फ्लड रिलीफ मेजर्स पर लाइट डाली और इन सबसे अधिक, ऑनरेबुल मिनिस्टर उपाध्याय के टेलेंट और सर्विसेज को डिसकस किया। उनके मेज छोड़ते ही जय-जयकार हुआ। भीड़ बढ़ती रही। लोग नारे लगाते, ठेलते-धकेलते मंत्री महोदय की एक झलक लेने में जुटे।

सींकिया नेता ने घोषणा की कि अब मंत्री महोदय आशीर्वाद देंगे। सुनील को अटपटा लगा, आशीर्वाद क्या! वक्तव्य कैसा! वह बाढ़-पीड़ितों की सेवा करने आया है, वरना कहना चाहिए, सहायता करने आया है, स्थिति का अध्ययन उसे करना है, वक्तव्य कैसा! इतने में नेताजी ने प्रस्ताव दोहराया कि माननीय उपाध्याय जी उन सबको कार्यरत रहने की प्रेरणा दें। सुनील चक्कर में पड़ गया कि किया क्या जाए? इतने भाषण हो चुके, भीड़ उसे भी देखना और सुनना चाहती है। इस अवसर पर वह चुप रहता है, तो लोगों पर प्रभाव प्रतिकूल पड़ेगा। कुछ बोलना ही उचित होगा। फिर काम की बात होगी। उसे भी मेज के मंच पर उपस्थित होना था। गले में मालाएँ पड़ीं। उसने संक्षेप में, अपने आगमन का उद्देश्य बताया। बाढ़ के विनाश-कांड पर दुःख व्यक्त किया। अपना सुझाव रखा कि सुभीते से यमुना को खोदकर गहरा किया जाए तथा इसके किनारे बसावट बढ़ने से रोकी जाए। हो सके तो आगरा से ऊपर यमुना पर किसी बाँध और नहर की व्यवस्था की जाए, ताकि वर्षा में जल सीधा नगर में प्रवेश न कर जाए।... तालियों की गड़गड़ाहट में सुनील मेज से उतरा।

माँग हुई, मंत्री महोदय बाढ़-सेवा में असाधारण कार्य करने वालों को स्वयं पुरस्कार वितरित करें। इतने में एक ओर से आपत्ति आई, पुरस्कार विजेताओं की सूची बनाने में धाँधली हुई, उसमें कुनबापरस्ती हुई है। भाई-भतीजावाद नहीं चलेगा। आरोप का प्रतिवाद हुआ। प्रतिवाद का प्रतिवाद हुआ। दोनों ओर से तनातनी बढ़ी, कुछ ने बाँहें चढ़ाईं। विरोधी नारों की नौबत आ गई। सुनील को पुरस्कार वाला सुझाव जँचा नहीं। अभी बाढ़ की तबाही फैली है, पुरस्कार कैसा? उसने जैसे-तैसे बीच-बचाव किया। आए थे हरि भजन को, ओटन लगे कपास।

जब तक कुछ काम की बात हो, सींकिया नेता मेज पर पुनः अवतरित हुए। उन्होंने मंत्री महोदय के आगमन और भाषण के उपलक्ष्य में अपना विस्तृत धन्यवाद भाषण आरंभ किया। सुनील को सूझा नहीं, करे क्या! बौखला गया। जी में आया, इस नेता को यमुना में धक्का दे दे, और खुद, खुद भी बाढ़ में छलाँग लगा दे।

# बुंदेलखंड की माटी कला की लोक परंपरा

**विनोद मिश्र 'सुरमणि'**

(22 जुलाई, 1966)

मूल रूप से रंगकर्मी हैं। पारंपरिक लोक-कलाएँ उन्हें विरासत में मिली हैं।

बुंदेली के कई प्रसिद्ध नाटकों का संगीत निर्देशन करने वाले श्री मिश्र ने संगीत में मास्टर डिग्री प्राप्त की है और उन्होंने 30 से अधिक नाटक लिखे हैं।

**संपर्क :**

vm9893437616@gmail.com


'माटी कहे कुम्हार से तू क्या रूँधे मोय—इक दिन ऐसा आएगा मैं रूँधूँगी तोय।' जौ तन माटी में मिल जानें। इस प्रकार की अनेक काव्य पंक्तियाँ, दोहा, कहावतें या अनेक युक्तियाँ समाज में मार्गदर्शन एवं जागृति हेतु कही, सुनी, लिखी, पढ़ी जाती हैं उनका आशय मनुष्य के मूल्यवान जीवन को दर्शाना भी होता है। परम पूज्य विश्व कवि संत शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने 'रामचरितमानस' में लिखा है— 'क्षिति, जल, पावक, गगन समीरा, पंच रचित यह अधम शरीरा।' वस्तुतः इन पाँच तत्त्वों के आधार पर जीव की संरचना है और इन्हीं में उसका विलय होना तय है। इसी सत्य को स्वीकार कर हमें इन सभी तत्त्वों को सरोकार करना चाहिए। हमारे जीवन में प्रकृति द्वारा प्रदत्त तत्त्वों का ही महत्त्व है। जल, वायु, मिट्टी, पहाड़, गगन, पेड़, पौधे सभी हमारे जीवन के अंग हैं। हमने इन्हीं तत्त्वों को जाना और अपने जीवन को इन्हीं के पास रखा।

हमारे यहाँ की एक लोक परंपरा रही है कि जन्म लिए शिशु को माटी का स्पर्श कराने हेतु उसे नग्न अवस्था में भूमि पर लिटाया जाता है। श्रीमद्भागवत पुराण में मैया जसोदा द्वारा भगवान कृष्ण को जमीन पर लिटाने की कथा आती है। उसी अवस्था में वह कंस द्वारा भेजे गए राक्षस का वध करते हैं। बालक को जमीन पर लिटाने की लोक वैज्ञानिक परंपरा शरीर के सूक्ष्म से सूक्ष्म अंग तत्त्व को मिट्टी के उत्प्रेक्षण तत्त्वों से स्पर्श कराती है। अक्सर देखा जाता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में रहन-सहन के स्तर पर ध्यान ही नहीं दिया जाता। शहरों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्र

के बच्चे मिट्टी से अधिक जुड़े रहते हैं। उनका खेल, उनकी दिनचर्या, चाहे वह घर-द्वार की हो, गाँव-मोहल्ले की हो या खेतिहर के कार्यों के साथ की हो, सभी में वह एकदम बेफिक्र होकर रहते हैं। अगर देखा जाए तो शहरी बालकों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्र के बालकों का स्वास्थ्य अधिक बलशाली एवं स्फूर्ति भरा होता है। मेरे कहने का तात्पर्य ऐसा नहीं है कि लोग अव्यवस्थित रूप से दिनचर्या का निर्माण करें। अपने होनहारों को ऐसे परिवेश में रहने दें जो ग्रामीण वातावरण प्रस्तुत करे। मेरा आशय उन आधुनिक संसाधनों के विकास एवं उनके प्रयोग करने के उपरांत स्वास्थ्य के गिरते स्तर पर ध्यानाकर्षण कराना है। चाऊमीन, टोस्ट, चॉकलेट और पेटीज खाने वाला बालक क्या गाँव

> हमारे यहाँ की एक लोक परंपरा रही है कि जन्म लिए शिशु को माटी का स्पर्श कराने हेतु उसे नग्न अवस्था में भूमि पर लिटाया जाता है। श्रीमद्भागवत पुराण में मैया जसोदा द्वारा भगवान कृष्ण को जमीन पर लिटाने की कथा आती है। उसी अवस्था में वह कंस द्वारा भेजे गए राक्षस का वध करते हैं।

की मिट्टी से उपजी सब्जियों, गाँव में बने दूध, दही, मक्खन, मठा, महेरी खाने वाले से स्वस्थ एवं बलशाली हो सकता है? अगर उत्तर नहीं है तो फिर उन तमाम वस्तुओं की उपयोगिता का प्रश्न ही क्या? ग्रामीण क्षेत्र के बालकों के विकसित शरीर और शहरी परिवेश के बालकों में फर्क महसूस किया जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्र का बालक मिट्टी से जुड़ा हुआ होता है। खेलता है, कूदता है और खेल-खेल में मिट्टी भी खा लेता है। जब वह एक किसान के रूप में शारीरिक रूप से आ जाता है तब खेत-खलिहान से जुड़ जाता है। ऐसे में नंगे पैर चलने वाला किसान स्वस्थ एवं बलशाली होता है अर्थात् मिट्टी की हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है।

कला की दृष्टि से चर्चा करें तो मिट्टी से निर्मित जीवनोपयोगी वस्तुएँ प्राचीन काल से ही हमारे उपयोग में रही हैं। इतिहास साक्षी है कि मोहन जोदड़ो की खुदाई में सिंधु घाटी की सभ्यता के आधार पर मिट्टी से बनी वस्तुएँ उस काल में बनाई गई मूर्तिकला के अवशेष एवं भवन निर्माण में प्रयुक्त की गई मिट्टी की ईंटें, शिलाएँ व दैनिक उपयोग के बर्तनों के टुकड़े मिट्टी कला के अति प्राचीनतम होने के प्रमाण हैं। कनिष्क के राज्यकाल में मृण मूर्तिकला का विकास हुआ था। उस काल की मृण मुद्राएँ अर्थव्यवस्था में सहायक होती थीं। कई आपातकाल, अकाल एवं महामारी ने भारत की संस्कृति को ढेरों में छिपा लिया है, जब कभी भी पुरातत्त्व सर्वेक्षण का कार्य किसी विशेष स्थल पर किया जाता है तो उस स्थान पर प्राचीन काल के पुरा अवशेषों में मिट्टी से निर्मित वस्तुएँ अवश्य ही मिलती हैं। वस्तुतः हमें इतिहास और हमारी प्राचीन परंपराएँ यह सिद्ध करती हैं कि धातु साधनों से पूर्व मिट्टी ही हमारी महती उपयोगी साधन थी, जिसका प्रयोग करते हुए कला संस्कृति जीवंत रही है। वहीं स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से मिट्टी के साथ खाद्यान्न आदि में बढ़ती ऊर्जा शक्ति से हमें सौष्टभ और बलशाली रहे होंगे। मिट्टी के बर्तन में बनाई गई दाल, मिट्टी के तवे पर पकी रोटी का स्वाद ही निराला होता है। वहीं शारीरिक स्वास्थ्य के लिए वह अधिक लाभकारी होती है। मटके का पानी ग्रीष्म ऋतु में आधुनिक युग के फ्रिज से कई गुना शीतलता प्रदान करता है। घड़े में रखा पानी कभी भी शारीरिक हानि नहीं पहुँचाता जबकि फ्रिज में बनता बर्फ गले और पेट के लिए हानिकारक भी हो सकता है। भारत के घड़े (मटके) की अपनी सभ्यता रही है। उत्तर प्रदेश के कौंछा भावर के मटके कई प्रदेशों में जाने जाते हैं। दतिया जिले की तहसील भांडेर का नाम भाँड़े के नाम पर पड़ जाने की किंवदंती प्रचलित है। अनेक सभ्यताओं/परंपराओं से मिट्टी को नाम मिले। लोक संस्कृति से जुड़ा व्यक्ति उसके विचारों, उसकी सोच, परंपरा को कहा जाता है कि वह मिट्टी से जुड़ा व्यक्ति है यानी हमारी नींव मिट्टी की ही है। भले ही आधुनिकता की दौड़ में हम भवनों का निर्माण सुविधानुसार कर रहे हैं।

बुंदेलखंड कला संस्कृति, सभ्यता का धनाढ्य क्षेत्र है, यहाँ की प्रकृति में रम्यता है, सुर है, नाद है, वहीं व्यक्ति के स्वभाव में कलात्मक, रचनात्मक चित्रण देखने को मिलता है। यहाँ की भवन निर्माण परंपरा शैली, यहाँ की कलाएँ, यहाँ की ग्राम्य परिवेश की सुख-सुविधाओं में मिट्टी कला की अति महत्त्वपूर्ण भूमिका है। बुंदेलखंड में चार प्रकार की मिट्टी होती है। वैज्ञानिक डॉ. ओम प्रकाश जी से हुई चर्चानुसार मूलतः मिट्टी लाल और काली होती है लाल दो भागों में– राकड़ और पडुआ, वहीं काली मिट्टी काबर और मार होती है। बर्तन निर्माण, खिलौने निर्माण में मार मिट्टी का उपयोग होता है। शेष मिट्टियाँ जल संरक्षण, खेती आदि में उपयोगी होती हैं। लेख में इसी विषय पर कुछ संक्षिप्त-सी चर्चा की जा रही है

जो सभ्यता, संस्कृति के प्रति लोगों के कम होते रुझान के कारण लिखा जाना उचित प्रतीत हो रहा है।

### भवन निर्माण

आदि काल के उपरांत मनुष्य में आई सभ्यता से वह गुफाओं और जंगलों से बाहर आकर रहने हेतु जगह एवं साधन की खोज करने लगा और मकान निर्माण का स्वरूप उसके मन में रहा। माटी के 'लौंधों' से कच्चा मकान बनाने की शुरुआत उसी समय की रही होगी। मिट्टी से बनने वाले ये मकान जहाँ गर्मी-सर्दी आदि मौसम से सुरक्षित रखते हैं, वहीं इन्हें सँवारने, सजाने में लगी महिलाओं ने लोक-कलाओं को भी जन्म दिया। आज मध्य प्रदेश के कई आदिवासी क्षेत्रों में इस प्रकार के सौंदर्य चित्रण लोक वास्तुकला में दिखते हैं। बुंदेलखंड क्षेत्र के सहारिया, आदिवासियों के कच्चे मकान कलात्मक और रचनात्मक दिखते हैं। आज हम आधुनिक बनने की होड़ में वास्तविक सुख से दूर होते जा रहे हैं। बुंदेलखंड क्षेत्र में कच्चे मकानों एवं व्यवस्थित पक्के मकानों में खपरैल की छाया ही होती थी। जिसमें प्रयुक्त नरिया, खपरे, मगरौं आदि की व्यवस्था मिट्टी से ही होती थी। यहाँ कहना उचित होगा कि 'खपरैल' आज शहरों से, गाँवों से विदा ले चुकी है। इसके पलायन से हमारी लोक की परंपरा विलुप्त हो रही है, अनेक शब्द सिर्फ पुस्तकों में पढ़े जाएँगे या बुजुर्गों

की बोलचाल में या आने वाले दिनों में शब्दकोश में ही रह जाएँगे। सभ्यता के आधार पर बनाए गए मकान, हवेली, गढ़ी, राऊरों की वास्तुकला समस्त क्षेत्र में पहचान दिलाने वाली होती है। यहाँ पर माटी के द्वारा किया गया पलस्तर या उसी से की गई नक्काशी देखते ही बनती थी। आज भवन निर्माण सीमेंट, कंकरीट, टाइल्स आदि से हो रहे हैं जो शीतलता की अपेक्षा अनुकूलतम वातावरण नहीं दे पाते।

### बर्तन निर्माण की कला

धातुओं से बर्तन निर्माण का दौर आया, ताँबा, पीतल, काँस्य, यहाँ तक कि चाँदी-सोने के बर्तनों का भी उल्लेख मिलता है परंतु स्टील से बने सस्ते और ना नष्ट होने वाले बर्तन चमक-दमक के इस युग में सर्वोपरि हो गए हैं। लोगों को उनके कारक का बोध नहीं, उनकी सुंदरता का बोध रहता है। इन सबसे पूर्व मिट्टी के बर्तन ही हमारे दैनिक उपयोग में लिए जाते थे। रसोई में चूल्हा, मटेलना, डिपोली, तवा आदि मिट्टी से ही बने होते थे। इन्हें कच्चे स्वरूप में लेते हुए प्रति दिवस 'पोतनी' से स्वच्छ किया जाता था। मिट्टी के तवे पर बनी

रोटी, हँड़िया में बनी दाल-सब्जी का स्वाद जिसने चखा सिर्फ वही बता पाएगा। स्वास्थ्य की दृष्टि से मिट्टी के बर्तन खाद्य पदार्थों में प्राप्त दोष को दूर करने की क्षमता रखते हैं। अन्य बर्तनों में अचार हेतु 'चपिया', भोज में प्रयुक्त कुल्हड़, बघार देने हेतु मिट्टी का दीया (दीपक) का अपना स्वाद होता था। जल संग्रहण के लिए 'ढहार', नाद, मटका, घैला, घैलिया आदि बनाए जाते थे। घर पर सामग्री को रखने हेतु मिट्टी के बर्तनों का उपयोग किया जाता था। 'घी' को रखने हेतु 'घिनोटी', जिसमें रखा घी अत्यधिक स्वादिष्ट और ऊर्जा देने वाला बन जाता था। स्नान हेतु 'नाद' पानी को 'कुनकुना' रखती थी। गमले पौधे लगाने हेतु बनाए जाते थे। अन्य बर्तनों में मलिया, वरोसी, कल्लिया, तइया आदि बनते थे।

### बर्तन निर्माण की सामग्री व साधन

लोक साहित्यकार हरिकृष्ण प्रजापति से हुई चर्चानुसार प्रजापति समाज में वरदिया, चकेरे और सोनकर बर्तन निर्माण का व्यवसाय करते हैं। इनके द्वारा बर्तन निर्माण में मिट्टी, लीध, ग्यौरी, खड़िया मिट्टी, भूसा की लरगसी का प्रयोग होता है। बर्तन निर्माण में चका (चक्र), चकौड़ा, चकरैई, थपा, थपुरिया (लकड़ी से बनी हुई) बेलुआ, पिंड़ी (पत्थर से बनी हुई) का प्रयोग होता है। बर्तन पकाने हेतु जहाँ अवा, उसका मुख्य स्थल होता है, वहीं लकड़ी, कंडे, बुरादा और लीद आदि से पकाए जाते हैं।

### कच्ची मिट्टी से देवी-देवताओं के विग्रह

हिंदू धार्मिक परंपरा में वैसे तो प्रति दिवस कुछ न कुछ तीज-त्योहार है ही, पर ज्येष्ठ माह से कार्तिक तक का प्रत्येक दिवस उत्सवों से भरा रहता है। इन दिनों में होने वाले अनेक लोक विधाओं में 'पूजा-

अर्चना' हेतु मूर्ति, विग्रह प्रतीकों की अस्थायी स्थापना की जाती है। वह कच्ची मिट्टी द्वारा ही निर्मित की जाती है। इन्हीं में से हलछठ में गैया-बैल, तीजा पर गौर (पार्वती), महालक्ष्मी पर 'हाथी', गणेश चतुर्थी पर गणेश प्रतिमा, चैत्र नवदुर्गा की तीज पर गणगौर और द्वासस पर गैया बच्चा आदि कच्ची मिट्टी से ही बनाकर उन्हें पकवानों से सजाया-सँवारा जाता है। चूँकि यह देवी-देवताओं के प्रतीक होते हैं अतः इनका विसर्जन तालाबों, नदियों आदि में कर दिया जाता है। इन्हें अग्नि में 'पकाने' की परंपरा नहीं है। ज्ञातव्य रहे कि कुम्हार समाज के लोग ही इन विग्रहों का निर्माण करते आ रहे हैं जिन्हें सम्मानस्वरूप 'पावन' यानी घर में बने पकवान, आटा, दाल, चावल व कुछ उपहारस्वरूप राशि प्रसाद रूप में दी जाती है और इन्हें परिवार का एक सदस्य ही माना जाता है।

## मिट्टी के खिलौने

बच्चों को लुभाने वाले मनमोहक खिलौने उन्हें जहाँ व्यस्त रखने का कार्य करते थे वहीं उनकी जिज्ञासा प्रवृत्ति के स्तर को भी बढ़ावा

प्रदान करते थे। आज प्लास्टिक ने खिलौनों के संसार में अपनी पैठ बना ली है। विशेषकर हमारा खिलौने पर हो रहा व्यय चीन या जापान के बैंकों की आमद बन रहा है। हमारा गरीब कलाकार मजदूरी करने हेतु मजबूर होता जा रहा है। मूलतः उसे स्थानीय कलाओं को छोड़ना पड़ रहा है। खिलौने वर्षों से हमारी परंपरा के अंग हैं। दतिया में बुलकिया जाति के लोग इस व्यवसाय को करते आ रहे हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी उन्होंने इसे सहेजकर रखा है। इसमें श्री लल्ला बुलकिया प्रमुख कला साधक हैं, इनके खिलौने सुहावने एवं आकर्षक होते हैं।

## दीपावली के खिलौने

दीपावली खिलौनों का मेला है, यह नवदुर्गा महोत्सव से ही प्रारंभ हो जाता है। इन खिलौनों का निर्माण कार्य, ग्वालिन, लक्ष्मी, गणेश, हाथी सवार, घोड़ा सवार, बंदर, जोकर, मोटा सेठ, आदि के रूप में होता है। पूजा हेतु दीपक, कजरौटी, डबुलिया, डहारिया, दीया आदि बनाए जाते हैं।

## मकर संक्रांति के गड़िया घुल्ले

तिल-गुड़ का महापर्व मकर संक्रांति पूजा-अर्चना, डुबकी लगाना और निर्धारित घड़ी पर स्नान करने का पर्व तो है ही, साथ ही बच्चों के लिए इसलिए सुखद है क्योंकि जहाँ कई क्षेत्रों में पतंगें उड़ाने का सुअवसर

मिलता है वहीं बुंदेलखंड क्षेत्र में धातु एवं मिट्टी के खिलौनों की पूजा उपरांत उन्हें वो मिल जाते हैं। मकर संक्रांति पर गड़िया-घुल्ला की पूजा की परंपरा है। मकर संक्रांति के अनुसार पीतल के घोड़े, हाथी खरीदते थे। सामान्य व्यक्ति के यहाँ मिट्टी के गड़िया-घुल्ला की पूजा होती आ रही है। घोड़े, हाथी के खिलौने पूजा उपरांत ही बच्चों को दिए जाते हैं। कुम्हार जाति के लोग इसे बनाते हैं। सादी मिट्टी से बनाकर इन्हें लाल 'गेरू' से रँगकर पकाया जाता है। 'गड़िया' गाड़ी का बिगड़ा शब्द है जो गोल आकार-सी बनती है। मुँह घोड़े का बना होता है, पैरों में चार पहिए लगे रहते हैं। यह खिलौना एक-दो दिन में ही टूट जाता है। इसी अवसर पर मिट्टी की गुल्लक बच्चों की प्रिय वस्तु है जिसमें पैसे संग्रह करने की प्रवृत्ति उनमें बननी शुरू होती है। खेल-खेल में शिक्षा की यह परंपरा आज टूट रही है।

## गोपालाष्टमी के कृष्ण

गोपाल अष्टमी के दिन भगवान कृष्ण गौ चरन को निकलते हैं। इस अवसर पर गायों को चराते कृष्ण, माखन चुराते कृष्ण, एकल कृष्ण, बालकृष्ण, राधाकृष्ण व गाय आदि स्वरूपों के खिलौने के विग्रह बनाए जाते हैं।

## सुअटा की गौर

अश्विन व कार्तिक माह में खेले जाने वाला सुअटा लड़कियों के लिए अति महत्त्वपूर्ण होता था। इस अवसर पर बनाई गई 'गौर' को सजाया-सँवारा जाता था।

## गणेश प्रतिमा एवं नवदुर्गा

गणेश चतुर्थी पर गणेश जी की पूजा-अर्चना के लिए भाँति-भाँति के गणेश विग्रह बनाए जाते हैं जिन्हें हर घर में विराजमान किया जाता है।

आजकल महाराष्ट्र की तर्ज पर गली-मोहल्लों में गणेश प्रतिमाएँ सजाई जाने लगी हैं। इसी प्रकार नवदुर्गा महोत्सव पर बंगाल की परंपरा ने स्पर्श कर अपनी आमद दर्ज करा ली है। हालाँकि इन प्रतिमाओं के विसर्जन उत्सव से नदी, तालाबों आदि को खतरा बना रहता है। कई बार तैरते हुए लोग इसका शिकार हो जाते हैं।

### साँझी के खिलौने

दतिया में साँझी की परंपरा रही है, जो अश्विन माह में घरों, मंदिरों एवं सार्वजनिक स्थलों पर हुआ करती थी। यह परंपरा हमें रंग संयोजन, रंग निर्माण व कलात्मक अभिरुचि बढ़ाने में सहायक थी, यह साँझी परंपरा दतिया के साथ वृंदावन में भी देखी जाती थी, पर आज विलुप्त हो गई है। निःशक्त संत बाबा राम लखन गुगौरिया ने इस ओर प्रयास किया है और इस वर्ष साँझी निर्माण करवाकर जागृति दी है। साँझी में बनने वाले खिलौने, स्नान करती महिलाएँ, बैंड समूह, बंदर, भालू, शेर

आदि जानवरों के खिलौने दतिया में महाराज गोविंद सिंह का दशहरे का चित्रण यहाँ की सबसे खूबसूरत विधा थी जिसे खिलौनों के माध्यम से साँझी में दिखाया जाता था। दतिया संग्रहालय में इतिहासकार स्व. महेश कुमार मिश्र 'मधुकर' के प्रयासों से यह चित्रण मूर्तिकला द्वारा प्रदर्शन हेतु रखा गया है। दुर्भाग्य यह कि संग्रहालय में 10 या 15 रुपये के ताले में इसकी उपेक्षित सुरक्षा की गई है।

### मोहर्रम की बुर्राक

मुस्लिम समाज द्वारा निकाले जाने वाले मोहर्रम के ताजियों के साथ बुर्राक निकाली जाती है जिसका सुंदर चेहरा बुलकिया समाज मिट्टी से बनाता आ रहा है।

### उत्सव, मेले व अन्य त्योहारों पर खिलौनों का विक्रय

दीपावली, गोपालाष्टमी, देवठानी ग्यारस, बसंत पंचमी, मकर संक्रांति, शिवरात्रि, चैत्र एवं कार्तिक माह का नवदुर्गा महोत्सव और स्थानीय स्तरों के छोटे-बड़े मेले, हाट व उत्सव।

### मिट्टी के वाद्य यंत्र

यह आश्चर्यचकित करने वाला बिंदु होगा कि वाद्ययंत्र और मिट्टी के? पर यह सत्य है कि दतिया से 25 कि.मी. दूर ग्राम कामद निवासी

घनाराम प्रजापति ने कुछ ऐसा ही कर दिखाया। उन्होंने नगड़ियाँ, ढोलक, मृदंग, चंग, ढप का निर्माण मिट्टी से किया ही है, साथ ही शंख रमतूला को बनाकर एवं मुँह से बजाकर लोगों को आश्चर्य चकित कर दिया है। लेखक ने स्वयं उन्हें ऐसे वाद्ययंत्र बनाने की प्रेरणा दी थी।

### मिट्टी का फ्रिज

घनाराम प्रजापति ने मिट्टी के फ्रिज का निर्माण आज से 20 वर्ष पूर्व किया था जिसमें तीन से चार घंटे तक पानी ठंडा रहता है। इस फ्रिज से ऊर्जा की बचत, पैसे की बचत आदि करने का कार्य किया गया। पर एक तत्कालीन प्रशासनिक अधिकारी इस कलाकार को फ्रिज के आविष्कार पर सम्मान दिलाने के लिए फ्रिज ले गए। घनाराम को न सम्मान मिला, न फ्रिज।

### मिट्टी की मुद्राएँ

दतिया क्षेत्र के केवलारी एवं बड़ौनी ऐतिहासिक ग्रामों में मिट्टी की चैत्र मुद्राएँ प्राप्त हुई थीं, इतिहासकार रवि ठाकुर इन्हें तीसरी शताब्दी के काल की बताते हैं जो बौद्ध भिक्षुओं के आदान-प्रदान में उपयोग की जाती थीं। दतिया संग्रहालय में ऐसी मुद्राएँ रखी हुई हैं।

मिट्टी कला हमारी प्राचीन धरोहर है। आज आधुनिक साधनों एवं समय की बचत के बढ़ते ग्राफ ने इस विधा को नुकसान पहुँचाया है। हमारी यह प्राचीन विधा दम तोड़ रही है। अगर इसके संरक्षण के लिए प्रयास नहीं किए गए तो हम मिट्टी से कटते रहेंगे—प्लास्टिक के अस्तित्व में खो जाएँगे। हम अपने देश को उस तरह खोखला कर देंगे जैसे भूमि के लिए प्लास्टिक हानिकारक है। मध्य प्रदेश में ऐसी ही कलाओं को जीवित रखने के लिए माटी कला बोर्ड बना हुआ है। क्या बोर्ड भोपाल के कमरों में ही बंद रहेगा? क्या कलाओं की आवाज उन तक नहीं पहुँचेगी? हमें बोर्ड निर्माण या उसके पदों पर बैठने की नहीं बल्कि उसके उद्देश्य को चरितार्थ करने की आवश्यकता है।

# मरुधरा में पावस और प्रचलित लोकगीत

**सपना मांगलिक**

**शिक्षा :** एम.ए., बी.एड.
(डिप्लोमा एक्सपोर्ट मेनेजमेंट)

**संप्रति :** उप संपादिका— आगमन साहित्य पत्रिका, स्वतंत्र लेखन

**प्रकाशित कृति :** (तेरह) पापा कब आओगे, नौकी बहू, सफलता रास्तों से मंजिल तक, ढाई आखर प्रेम का, कमसिन बाला, कल क्या होगा, बगावत आदि।

**सम्मान :** आगमन साहित्य परिषद् द्वारा 'दुष्यंत सम्मान', प्राइड ऑफ नेशन द्वारा सीमापुरी टाइम्स, भारतेंदु समिति कोटा, एत्मादपुर नगर निगम द्वारा 'काव्य मंजूषा' सम्मान, ज्ञानोदय साहित्य संस्था कर्नाटक द्वारा 'ज्ञानोदय साहित्य भूषण 2014 सम्मान', आदि।

**संपर्क :**

sapna8manglik@gmail-com


*मैं नीर भरी दुःख की बदली*
*विस्तृत नभ का कोई कोना,*
*मेरा कभी न अपना होना,*
*परिचय इतना इतिहास यही,*
*उमड़ी थी कल मिट आज चली*

महादेवी वर्मा अपने दुःख की तुलना नीर भरी बदली से करती हैं तो वियोगी हृदय अपने आँसुओं को बेमौसम बरसात का दर्जा देते हैं। प्रेमी को बादल प्रियतमा के संदेश लाने वाले संदेशवाहक प्रतीत होते हैं। तो दो प्रेम से धड़कते दिलों को बारिश धरती और आकाश का मिलन नजर आता है जिसमें उनके दिल उमंगों से सराबोर हो झूमते नाचते सावन की मल्हार गाने लगते हैं। कवि हृदय कभी मेघ को काजल जैसा काला, तो कभी धुएँ जैसा भूरा, तो कभी रुई के फाहे-सा सफेद कहता है। कल्पनाओं का कोई अंत नहीं होता और पावस तो है ही कल्पनाओं की ऋतु जिसे देखो वो सावन में अपने अंदर एक अलग ही उमंग, एक अलग ही आकर्षण महसूस करता है। पावस में बादलों की सुंदरता अपनी चरम सीमा पर तब पहुँचती है जब शाम को ढलते सूरज या भोर के उगते सूरज की किरणें आकाश के साथ उसपे छाए बादलों को भी लाल, पीला जामा पहना देती हैं। कौंधती बिजली, गरजते बादल और बरसती बूँदें। मानसून की फुहारें जब तन के साथ मन को भिगोती हैं तो हर एक मन मदमस्त हो उठता है। वह सभी पेड़ और पौधे जिन पर वर्षा के बादल अमृत की वर्षा करते हैं, जीवन से भरपूर हो उठते हैं। आकाश में छाए काले बादलों को देखकर किसका दिल झूमने नहीं लगता, चाहे वह जंगलों में रहने वाले मयूर हों, कवि हों, किसान हों या गर्मी से तपते हुए नगरवासी। बेसन के चटपटे गरमागरम भजिये और चाय की चुस्कियों के साथ हर मन कोई न कोई गीत जरूर गुनगुनाने पर विवश हो उठता है।

### मरु में पावस का महत्त्व

राजस्थान में पावस जहाँ प्यासी धरती के कंठ को गीला कर उसमें प्राणों का संचार करता है वहीं हरियाली से रूठे शुष्क रेगिस्तानी इलाकों में भी जन-जीवन में खुशियों की बाढ़-सी आ जाती है। अमीर खुसरो ने भी अपनी मुकरियों में मरु और पावस का अति सुंदर प्रयोग किया है— 'तप्त मरु में शीतल तरुवर ऐ सखि साजन! न सखि गुरुवर'। हमारे यहाँ मानसून आषाढ़, सावन, भादों के महीनों में एकसार हो जीवन का संगीत रचता है। एक बड़ी आबादी के लिए मानसून का आना,

महज पानी का बरस जाना भर नहीं है। यह जीवन की फुहार है। क्योंकि मानसून और उपज का रिश्ता अटूट है। मरुप्रदेश में बारिश बहुत नखरे दिखाने के बाद आती है और जैसे ही ऊपर आसमान में बदली छाती है, तपते रेत के धोरे मुस्का उठते हैं। मरु में बारिश का ठीक वैसा ही महत्त्व है जैसे मानव जीवन में प्रेम का, मानसून की बारिश बताती है कि इस साल कितना अनाज उपजेगा, कितने चूल्हों में अदहन चढ़ेगा, कितने घरों में सुख के कदम पड़ेंगे। बेटी का ब्याह, छोटे की पढ़ाई, पुराने कर्ज की देनदारी, ट्रैक्टर की किस्त, माँ के गिरवी रखे कंगनों की वापसी जैसे अनगिनत छोटे-बड़े काम पूरे होंगे या नहीं, कद मानसून के कद से तय होता है। अच्छा मानसून, अच्छा कल लेकर आता है। छप्पर से टपक रहे पानी के नीचे खाली बर्तन रखते हुए किसान का मन उम्मीद से भर जाता है कि धान का रोपा लगाने के लिए इस बार शायद पानी कम नहीं पड़ेगा। नहरों, नदियों, तालाबों सहित धरती के भीतर इतना पानी समा जाएगा कि गेहूँ और चने की सिंचाई भी जी भर हो सकेगी।

### मरुधरा में पावस ऋतु एवं संस्कृति

पावस ऋतु में जहाँ आसमान अपने गीले केश खोलकर उनसे गिरती बूँदों से रेतीली धरती की तपन कम कर उसे मादकता प्रदान करता है वहीं मरुधरा भी अपने प्रियतम गगन के इस नेह को पाकर फूली नहीं समाती और हरे रंग की हरियाली चुनर ओढ़कर नवयौवना की तरह इठलाती है। अपनी कस्तूरी-सी माटी से सौंधी सुगंध बिखेर वातावरण को रूमानियत से भर देती है। सावन के महीने में तीज के मौके पर मायके या ससुराल में बहू-बेटियों को मायके बुलाने और उनको उपहारस्वरूप लहरिया देने की परंपरा भी इसी सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा रही है और आज भी है। लहरिया हरे, लाल, पीले, संतरी इत्यादि चटख रंगों की बंधेज साड़ी और चुनरी होती है। राजस्थान या राजस्थानी संस्कृति से जुड़े लोगों के लिए लहरिया सिर्फ कपड़े पर उकेरा गया डिजाइन या स्टाइल भर नहीं है। ये रंग-बिरंगी धारियाँ शगुन और संस्कृति के वो सारे रंग समेटे हैं जो वहाँ के जन-जीवन का अटूट हिस्सा हैं। यहाँ सावन में लहरिया पहनना शुभ माना जाता है। आज भी गाँव ही नहीं, शहरी संस्कृति में भी लहरिया के रंग-बिरंगे परिधान अपनी जगह बनाए हुए हैं। लहरिया की ओढ़नी या साड़ी आज भी महिलाओं के मन को खूब भाती है। कहते हैं कि कुदरत ने राजस्थान को यहाँ की शुष्कता के कारण बाकी प्रदेशों से कुछ कम छटा बख्शी है जिसकी पूर्ति यहाँ के बाशिंदे अपने पहनावे में चटख छींट और लहरिया का उपयोग कर पूरी कर लेते हैं। यह त्योहार यह बताने का अवसर है कि बहू-बेटियों के जीवन का सतरंगी उल्लास ही हमारे घर-आँगन का इंद्रधनुष है। ठंडी-ठंडी हवा, आसमान से गिरती फुहार, हरियाली भरा वातावरण, ढोलक, मँजीरों की थाप के साथ सुनाई देने वाली सावन की मल्हार युवतियों एवं महिलाओं की जुबाँ पर रहती थीं। इससे मालूम पड़ता था कि सावन आ गया है। सावन के इस माह का सालभर से बेसब्री से इंतजार करती हैं। राजस्थान में श्रावण मास में हरियाली तीज, नाग पंचमी, रक्षाबंधन जैसे त्योहार लोग पूरे हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं। राजस्थान के मानसून का वास्तविक आनंद उठाना है तो इसके गाँवों का अवलोकन करें। गाँव में आज भी बच्चियाँ और युवतियाँ एक ही स्थान पर आम की डाल पर ऊँचे-ऊँचे झूले डालती हैं। उनके दुपट्टे में कच्ची कैरी और इमली जैसी मुँह में खटास और चटखारे ले आने को उत्सुक खाद्य सामग्री बँधी होती है। वह सावन की मल्हार और कजरी गाते हुए बारी-बारी से झूले पर बैठती हैं और जो झूले पर नहीं बैठती हैं वो मल्हार गाते-गाते अपनी सखियों को धीमे-धीमे झोटा देती हैं। इन मल्हारों में

> “कितने चूल्हों में अदहन चढ़ेगा, कितने घरों में सुख के कदम पड़ेंगे। बेटी का ब्याह, छोटे की पढ़ाई, पुराने कर्ज की देनदारी, ट्रैक्टर की किस्त, माँ के गिरवी रखे कंगनों की वापसी जैसे अनगिनत छोटे-बड़े काम पूरे होंगे या नहीं, कद मानसून के कद से तय होता है। अच्छा मानसून, अच्छा कल लेकर आता है। छप्पर से टपक रहे पानी के नीचे खाली बर्तन रखते हुए किसान का मन उम्मीद से भर जाता है कि धान का रोपा लगाने के लिए इस बार शायद पानी कम नहीं पड़ेगा।”

उनके सपनों के राजकुमार का वर्णन और भावी ससुराली जनों और ससुराल के सुख की कल्पनाएँ होती हैं। विवाहित पुत्री राजस्थानी रिवाज के अनुसार सावन में अपने मायके आती है और अपनी सखियों के साथ लोकगीतों के माध्यम से अपने सुख-दुःख साझा करती है। आसमान पर काली घटाएँ, रिमझिम फुहार, चारों ओर नजर आती हरियाली, खुशनुमा वातावरण में झूले पर रंग-बिरंगे लहरिया लहँगा-चोली में इन बच्चियों और युवतियों के आगे स्वर्ग की अप्सराएँ भी फीकी नजर आती हैं। इनकी माताएँ अपने घर के मंदिर में कृष्ण भगवान् को झूला झुलाती और तरह-तरह के घेवर और फैनी का प्रसाद लगाती हैं। घेवर और फैनी राजस्थान की प्रसिद्ध मिठाइयाँ हैं जो केवल सावन में ही निर्मित होती हैं। जो राजस्थान घूमने के इच्छुक हैं, मैं उन्हें राजस्थान सावन के महीने में ही घूमने की सलाह दूँगी क्योंकि मानसून में यहाँ का गुलाबी नगर अपने रंग को और गहरा कर अपनी आन, बान और शान के साथ आपको अपने शौर्य की कहानी सुनाएगा तो उदयपुर का मानसून महल भी आपको झूमता-गाता यही कहेगा— ‘केसरिया बालम आवो पधारो म्हारे देश’। मैं खुद राजस्थान के भरतपुर जिले में जन्मी हूँ जिसे लोहागढ़ के नाम से भी जाना जाता है। उसके अभेद किले और केवलादेव राष्ट्रीय अभ्यारण्य में मानसून में घूमने-फिरने का आनंद मुझसे अधिक कौन जान सकता है?

## सावन में गाए जाने वाले राजस्थान के लोकगीत

सावन में झूले के झोटे लेती नार मीठी जुबान में जब कजरी और मल्हार गाती है तो मन का मयूर ऐसे अँगड़ाई लेता है जैसे घने जंगल में बारिश की फुहार तन पर पड़ते ही मोर अपनी सुध-बुध बिसराकर अपने पंखों को फैलाकर मस्त होकर झूमता है। ठीक उसी तरह अपने अस्सी कली के घाघरे को फैला राजस्थान की गुजरिया झूमने और गाने लगती है—

*झूला तो परि गए अमुआ की डार पे जी*

बात जब मरुधरा की हो रही है तो यहाँ की प्रसिद्ध लोककथा ढोला और मारू का जिक्र आना स्वाभाविक है। कथानुसार— 'नायक ढोला नरवर के राजा नल का पुत्र था जिसे इतिहास में ढोला व साल्हकुमार के नाम से जाना जाता है, ढोला का विवाह बालपने में जांगलू देश (बीकानेर) के पूँगल नामक ठिकाने के स्वामी पँवार राजा पिंगल की पुत्री मारवणी के साथ हुआ था। उस वक्त ढोला तीन वर्ष का और मारवणी मात्र डेढ़ वर्ष की थी। इसीलिए शादी के बाद मारवणी को ढोला के साथ नरवर नहीं भेजा गया। बड़े होने पर ढोला की एक और शादी मालवणी के साथ हो गई। बचपन में हुई शादी को ढोला भी लगभग भूल चुका था। तुर ढोली याचक बनकर किसी तरह नरवर में ढोला के महल तक पहुँचने में कामयाब हो गया और रात होते ही उसने ऊँची आवाज में गाना शुरू किया। उस रात बादल छा रहे थे, अँधेरी रात में बिजलियाँ चमक रही थीं, झीनी-झीनी पड़ती वर्षा की फुहारों के शांत वातावरण में ढोली ने मल्हार राग में गाना शुरू किया। ऐसे सुहाने मौसम में ढोली के मल्हार राग का मधुर संगीत ढोला के कानों में गूँजने लगा और ढोला फन उठाए नाग की भाँति राग पर झूमने लगा। तब ढोली ने साफ शब्दों में गाया—

*जे थूँ साहिबा न आवियो, साँवण पहली तीज।*
*बीजळ तणे झबूकडै, मूँध मरेसी खीज।।*

अर्थात् यदि आप सावन की तीज के पहले नहीं गए तो वह मुग्धा बिजली की चमक देखते ही खीजकर मर जाएगी। आपकी मारूवण के रूप का बखान नहीं हो सकता। पूर्व जन्म के बहुत पुण्य करने वालों को ही ऐसी स्त्री मिलती है।

*ढोला नरवर सेरियाँ, धण पूँगल गळीयाँह।'*

गीत में पूँगल व मारवणी का नाम सुनते ही ढोला चौंका और उसे बालपने में हुई शादी की याद ताजा हो आई। ढोली ने तो मल्हार व मारू राग में मारवणी के रूप का वर्णन ऐसे किया जैसे पुस्तक खोलकर सामने कर दी हो। उसे सुनकर ढोला तड़फ उठा और ढोली के साथ मारवणी को लिवा आने चल दिया।

मरुधरा मानसून से जब तर-ब-तर हो जाती है तो हृदय के भाव लोकगीतों के स्वर में फूट पड़ते हैं। कजरी, आल्हा, झूला खास तौर पर यहाँ वर्षा ऋतु में गाए जाते हैं। एक बानगी देखिए— 'हाली-हाली बरसू हे इनर देवता। पानी बिना पड़इअ अकाल हो राम' में बारिश के देवता इंद्र से याचना है, तो कजरी में 'कहंवा से आवै रामा कारी हो बदरिया/कहंवा से आवै अँधियरिया ना/पूरबै से आवै रामा कारी हो बदरिया/पछिमैं से आवै अँधियरिया ना।।' बादल के आने का वर्णन।

पिया मिलन को व्याकुल सजनी का मन प्रिय से मिलन को आतुर हो कह उठता है—

*अरी बहना अँखियाँ हैं प्यासी-प्यासी*
*मनवा में पूर्णमासी,*
*अब तक न आयो मेरो बालमा*

सावन की पुरवाई संग सजनी का मन भी हिचकोले ले-लेकर अपने सजन को पुकारता है—

*सावन का महीना घटाएँ घनघोर*
*आज कदंब की डाली झूले राधा नंद किशोर*

पावस ऋतु में झूला झूलते यह भजन भी खूब गाया जाता है—

*झूला पेपर पे दरवा दीजो, करौली वाली मैया*

बहनें भी सावन के महीने में उन्हें ससुराल से लिवा ले जाने के लिए आने वाले अपने-अपने भाइयों का इंतजार करती हुई गाती हैं—

*अरे भैया मोरे, बहन लेने आओ कि सावन आया रे*

या फिर—

*अम्मा मेरे बाबा को भेजो री,*
*कि सावन आया।*
*बेटी तेरा बाबा तो बूढ़ा री,*
*कि सावन आया।*
*अम्मा मेरे भाई को भेजो री,*
*कि सावन आया।*
*बेटी तेरा भाई तो बाला री,*
*कि सावन आया*

माँएँ भी अपने शिशुओं को धीमे-धीमे झूला झुलाते हुए गुनगुनाती हैं—

*चंदन का है पलना, रेशम की है डोर*
*झूला झूले बृज में ज्यों नटवर नंद किशोर*

प्रिया मिलन को आतुर सजन के जिस्म को भी बारिश की ठंडी-ठंडी बूँदें जलाने लगती हैं और वह रक्षाबंधन पर अपनी सजनी को मायके से विदा करा लाने की घड़ी का बड़ी बेसब्री से इंतजार करता है। पावस की इस मोहिनी ऋतु में जहाँ लड़कियाँ अपने माता-पिता, भाई-बहन और सखियों से मिलने और बतियाने को लेकर प्रफुल्लित होती हैं वहीं सजन का बिछोह भी उनके हृदय में हूक उठाता है। जहाँ दिन में बारिश की बूँदों की तरह वो घर-आँगन में छम-छम अपनी पायल झनकाती यहाँ से वहाँ हास-परिहास करती विचरती हैं, वहीं रात्रि के सूनेपन और बारिश की बूँदों की टप-टप उन्हें उनके पिया की याद दिलाकर सोने नहीं देती।

# रातें हुईं उदास

पूरब से पश्चिम बहे, ठंडी ठगनि बयार।
मदन-आग से तन जले, रिमझिम पड़ें फुहार।।

इधर विरह में जल रही, कुछ भी नहीं सुहाय।
उधर पपीहा बाग में, विरही गीत सुनाय।।

नस-नस सिरहन दौड़ती, फड़कें अधर, कपोल।
पिया विरह कब तक सहूँ, चुप कर पपीहा बोल।।

हूक हृदय में उठत है, झील बने दोऊ नैन।
औलाती* से बहत हैं, कंठ अटकते बैन।।

रात-रात भर मैं जगूँ, प्रियतम आएँ भोर।
निष्ठुर बन आवें नहीं, तड़फे नित्य चकोर।।

कैसे बतियाँ मैं करूँ, कह दो अब भरतार।
सिगनल रहें विलुप्त नित, मोबाइल बेकार।।

दिखता कागा है नहीं, मेघ न आएँ पास।
दिन काटे कटता नहीं, रातें हुईं उदास।।

## संतोष कुमार सिंह

(8 जून, 1951)

**संप्रति :** इंडियन ऑयल मथुरा रिफाइनरी से उत्पादन अभियंता के पद से सेवानिवृत होने के बाद स्वतंत्र लेखन।

**प्रकाशित साहित्य :** प्रौढ़ साहित्य की 20 पुस्तकें तथा बाल साहित्य की 18 पुस्तकें प्रकाशित। साहित्यिक पत्रिकाओं एवं इंटरनेट पर अनेकों रचनाओं का प्रकाशन, आकाशवाणी व दूरदर्शन से कविताओं का प्रसारण।

**पुरस्कार व सम्मान :** तीन पुस्तकों पर पुरस्कार तथा कई साहित्यिक संस्थाओं से सम्मान प्राप्त।

**संपर्क :** 9456882131


*औलाती (छप्पर से टपकती वर्षा की बूँदें)

# कुंडलियाँ

सावन बरसा जोर से, प्रमुदित हुआ किसान।
लगा रोपने खेत में, आशाओं के धान।।
आशाओं के धान, मधुर स्वर कोयल बोले।
लिए प्रेम-संदेश, मेघ सावन के डोले।
'ठकुरेला' कविराय, लगा सबको मनभावन।
मन में भरे उमंग, झूमता-गाता सावन।

सावन का रुख देखकर, दादुर ने ली तान।
धरती दुल्हन-सी सजी, पहन हरित परिधान।।
पहन हरित परिधान, मोर ने नृत्य दिखाया।
गूँजे सुमधुर गीत, खुशी का मौसम आया।
'ठकुरेला' कविराय, मास है यह अति पावन।
कितने व्रत, त्योहार, साथ में लाया सावन।।

सावन आया झूमकर, बरस रहा आकाश।
जल की बूँदें दे रहीं, सुख का मृदु अहसास।।
सुख का मृदु अहसास, हुई अल्हड़ पुरवाई।
विरही हुए अधीर, काम ने आग लगाई।
'ठकुरेला' कविराय, स्वप्न जागे मनभावन।
जगी मिलन की आस, लौटकर आया सावन।।

छम-छम छम-छम जल गिरे, बरस रहा आनंद।
मोर, पपीहा, कोकिला, गायें मिलकर छंद।।
गायें मिलकर छंद, सभी की मिटी उदासी।
गूँजे आल्हा, गीत, मल्हारें, बारहमासी।
'ठकुरेला' कविराय, घुल रही मन में चम-चम।
थिरके सबके गात, थिरकती पावस छम-छम।।

पानी बरसा गगन से, वसुधा हुई निहाल।
नदियाँ, नाले, कूप, सर, सब ही मालामाल।।
सब ही मालामाल, खुशी चौतरफा छाई।
महकी सौंधी गंध, प्यार की ऋतु ले आई।
'ठकुरेला' कविराय, लगा धरती इतरानी।
सहसा आई लाज, हो गई पानी-पानी।।

लेकर घट जल से भरे, घन दौड़े चहुँ ओर।
मन चातक पागल हुआ, रह-रह करता शोर।।
रह-रह करता शोर, प्रेम के राग सुनाए।
काश, विरह की पीर, किसी बदली तक जाए।
'ठकुरेला' कविराय, जगत का सब कुछ देकर।
हो यह जीवन धन्य, प्यार के दो पल लेकर।।

## त्रिलोक सिंह ठकुरेला

(1 अक्टूबर, 1966)

**प्रकाशित कृतियाँ :** नया सवेरा, काव्यगंधा।

**संपादित पुस्तकें :** आधुनिक हिंदी लघुकथाएँ, कुंडलियाँ छंद के सात हस्ताक्षर, कुंडलियाँ कानन, कुंडलियाँ संचयन।

**सम्मान :** राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा 'शम्भूदयाल सक्सेना बाल साहित्य पुरस्कार'; पंजाब कला साहित्य अकादमी, जालंधर (पंजाब) द्वारा 'विशेष अकादमी सम्मान'; विक्रमशिला हिंदी विद्यापीठ, गांधीनगर (बिहार) द्वारा 'विद्या-वाचस्पति' आदि।

**संप्रति :** उत्तर पश्चिम रेलवे में इंजीनियर

**संपर्क :** trilokthakurela@gmail-com

# राजस्थानी कविताएँ

## बारिश की प्रेमिल चिट्ठियाँ : चार कविताएँ

### (एक)

धरा तपती
पूरे ग्रीष्म
तब पिघलता आकाश पर टँगे
बादल का कलेजा

धरा को
आकाश के प्रेम का परिचय देती
झरमर-झरमर बारिश

पहली चिट्ठी
मिली नहीं कि मोरिया
खोल लेता अपने सुंदर पंख

इन दिनों
मोरिया बन जाता द्विभाषी व्यापारी
करता व्यापार बातों का।

### (दो)

जितना गरजता
आकाश में बादल
उतना बैठता जाता कलेजा
धरा का

साँझ को
शीतल बयार
उड़ाता सूखे पात
धरा कर रही हो जैसे
मिलन-सिणगार

सुबह
धरा की देह में दिखी जो नमी
वह आकाश के प्रेम की थी।

### (तीन)

बादल जब
गरजे-बरसे
धरा की देह में रमती हैं चींटियाँ

आकाश पिया का
मिलता जब अमृत-स्पर्श
धरा की कोख में फूट आती
दो कोंपल।

### (चार)

बारिश के दिनों
हरा दुशाला ओढ़ धरा देती हैं
आकाश को नेह-निमंत्रण

रूठा बादल
आश्विन के अंतिम तक
नहीं पहुँचाता जब
निमंत्रण नेह का

आकाश भी
आषाढ़ में खोलता है
बारिश के पट

पहली बारिश की
पहली चिट्ठी खुली नहीं
कि आकाश की साँसों में घुल जाती
धरा की सौंधी खुशबू।

**ओम नागर**

(20 नवम्बर, 1980)

**शिक्षा :** एम.ए. (हिंदी एवं राजस्थानी) पीएच.डी., बी.जे.एम.सी.

**प्रकाशन :** 'छियांपताई', 'प्रीत', 'जद बी मांडबा बैठूँ छूँ कविता', 'देखना एक दिन', विज्ञप्ति भर बारिश

**पुरस्कार व सम्मान :** कथेतर गद्य की पांडुलिपी 'निब के चीरे से' के लिए भारतीय ज्ञानपीठ का नवलेखन पुरस्कार-2015, केन्द्रीय साहित्य अकादमी नई दिल्ली द्वारा राजस्थानी कविता संग्रह 'जद बी मांडबा बैठू छूँ कविता' पर 'युवा पुरस्कार-2012', राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर द्वारा हिंदी कविता संग्रह 'देखना, एक दिन' पर सुमनेश जोशी पुरस्कार, 2010-11. राजस्थानी भाषा साहित्य एवं संस्कृति अकादमी, बीकानेर द्वारा शिवराम के जननाटक 'जनता पागल हो गई है' के राजस्थानी अनुवाद 'जनता बावळी होगी' पर 'बावजी चतरसिंह' अनुवाद पुरस्कार 2011-12 आदि।

**संप्रति :** लेखन एवं पत्रकारिता

**संपर्क :** omnagaretv@gmail.com

## विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी

**शिक्षा :** एम.ए., बी.एड., एम.एससी., राजस्थान विश्वविद्यालय।

प्रधानाचार्य के पद से सेवानिवृत्त।

**लेखन :** विज्ञान, शिक्षा व बाल साहित्य का लेखन। लगभग 350 रचनाएँ राष्ट्रीय व राज्य स्तरीय ख्याति प्राप्त पत्रिकाओं— नंदन, देवपुत्र, बालभारती, सुमन सौरभ, बाल वाटिका, बालवाणी, बालहंस, सरिता, मुक्ता, नवनीत, कादंबिनी, इतवारी पत्रिका, विज्ञान कथा, बाल प्रहरी, नवभारत टाइम्स, स्पंदन शिक्षक दिवस प्रकाशन, शैक्षिक मंथन, साहित्य अमृत, नया कारवाँ आदि में प्रकाशित।

**प्रकाशन :** विज्ञान कथाएँ आदि का प्रकाशन। एक विज्ञान उपन्यास, जीवनियाँ, विज्ञान लेख, कहानियाँ पुस्तकें जिनमें बच्चों की 'अंतरिक्ष के लुटेरे' आदि।

**सम्मान :** राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर द्वारा 1997 के शम्भूदयाल सक्सेना बाल साहित्यकार पुरस्कार सहित कई पुरस्कारों से सम्मानित।


# वर्षा की ऋतु आई

रहीम जी ने कहा है कि रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून। पानी सावन में आता है। मैं कहना चाहता हूँ कि ऋतुराज सावन राखिए, बिन सावन सब सून। सावन का सूखा होते ही भारत के वित्त मंत्री को बुरे सपने आने लगते हैं। लोग बसंत को ऋतुओं का राजा कहते समय यह भूल जाते है कि वर्षा बिना बसंत बहार नहीं आ सकती। जब पानी ही नहीं होगा तो कैसे पौधे पनपेंगे और कैसे उन पर फूल आएँगे? जल ही जीवन है और जल का स्रोत है वर्षा। करने वाले तर्क कर सकते हैं कि पृथ्वी पर जल की क्या कमी, 70 प्रतिशत धरती जल से ढकी है। पहाड़ बर्फ से ढके हैं। चारों ओर जल ही जल है। ये बचकानी बातें हैं। समुद्र का खारा जल हमारी प्यास बुझाने के बजाय और जगा देता है। पृथ्वी पर उपलब्ध जल का मात्र एक प्रतिशत जल ही जीवों के उपयोग का है। उस एक प्रतिशत को भी हम पूरा रोक नहीं पाते, बहकर पुनः समुद्र से जा मिलता है। जो बचता है उसे भी हम गंदा कर बाहर बहा देते हैं। उस गंदे जल को शुद्ध कर हमारे को लौटाती है वर्षा।

दो कप चाय बनाने के लिए गर्म पानी करते समय भी चिंता करते हैं कि कहीं गैस अधिक नहीं जल जाए। कल्पना करिए कि आपको अपनी आवश्यकता का जल वाष्पन द्वारा शुद्ध करना होता तो कितना बिल आता, मगर सूर्य पूरी पृथ्वीवासियों के लिए जल को शत-प्रतिशत शुद्ध कर देता है। पानी की एक बोतल का भाव आपको मालूम है, मगर सूर्य है, बिल की बात ही नहीं करता। जो जल बहकर हिंद महासागर या अरब सागर में जा गिरता है उसे पुनः हिमालय तक पहुँचाने का कार्य भी सूर्य ही करता है। सूर्य के आदेश पर पानी भरके दौड़े चले आते हैं। डीजल के भाव बढ़ते ही माल भाड़ा बढ़ जाता है। मगर सूर्य जल के परिवहन का बिल कभी प्रस्तुत नहीं करता।

सूर्य हमारे लिए पानी शुद्ध करने के लिए तपता है। बादलों के रूप में एकत्रित जल को सुदूर दक्षिण से ठीक उत्तर तक खींच

लाने के लिए सूर्य तपता है, मगर हम उसकी प्रशंसा में एक शब्द भी नहीं कहते। तपने के लिए उसकी निंदा और करने लगते हैं। सूर्य प्रशंसा या निंदा की परवाह नहीं करता। सूर्य तटस्थ भाव से अपना कार्य करता रहता है। सूर्य की परोपकारिता से प्रभावित हो, कुछ लोग उसे देवता कहते हैं तो कुछ अन्य लोगों को यह भी पसंद नहीं आता। अंधविश्वासी कहकर उनकी ही आलोचना करने लगते हैं।

हमारे एक मित्र प्यासे थे। तभी उन्हें गिलास में रखा कुछ पानी दिख गया। मित्र ने पूछा, यह जूठा तो नहीं है? हमने कहा, तुम जूठे की बात करते हो, इस जल को पहले असंख्य बार पीया जा चुका है। पृथ्वी का एक प्रतिशत जल का ही उपयोग हम बार-बार करते हैं। काँच के गिलास को काम में लेकर धोकर रख देते हैं। उस गिलास से पहले कितनों ने पानी पीया उसका कोई हिसाब नहीं होता। ठीक वैसे ही जल की किसी मात्रा को पहले कितने जंतु, पौधे या लोग पी चुके हैं, इसका कोई हिसाब नहीं है।

"हमारे एक मित्र प्यासे थे। तभी उन्हें गिलास में रखा कुछ पानी दिख गया। मित्र ने पूछा, यह जूठा तो नहीं है? हमने कहा, तुम जूठे की बात करते हो, इस जल को पहले असंख्य बार पीया जा चुका है। पृथ्वी का एक प्रतिशत जल का ही उपयोग हम बार-बार करते हैं। काँच के गिलास को काम में लेकर धोकर रख देते हैं। उस गिलास से पहले कितनों ने पानी पीया उसका कोई हिसाब नहीं होता।"

गर्मी पाकर पानी के अणु हवा पर सवार हो जाते हैं। इसे हम वाष्पन कहते हैं। गर्मी की उपलब्धता बढ़ने के साथ वाष्पन की गति बढ़ती जाती है। पानी के अणु एकल होते हैं तो उन्हें उठाए रखने में हवा को कोई परेशानी नहीं होती। जल युक्त हवा ऊपर उठकर ठंडी हो जाती है तो पानी के अणु आपस में चिपककर सूक्ष्म बूँदों में बदलने लगते हैं। यहीं बादलों की उत्पत्ति होती है। बादलों की आपसी रगड़ से उनमें धन या ऋण आवेश पैदा हो जाता है। विपरीत आवेश के बादल पास में आने पर ऋण आवेश छलाँग लगाकर एक बादल से दूसरे में जाता है तो मार्ग चमकता है, साथ ही गर्जन पैदा होती है।

बूँदें आपस में जुड़कर बड़ा आकार ग्रहण करती हैं तो हवा उन्हें उठा नहीं पाती और वे गुरुत्व बल के कारण पृथ्वी की सतह पर गिरने लगती हैं। इसे ही वर्षा कहते हैं। वातावरण का तापक्रम शून्य से कम होने पर बूँदें बर्फ में बदल जाती हैं तब उसे हिमपात कहते हैं। नमी युक्त हवा के आकाश में बहुत ऊपर उठने पर वहाँ के निम्न तापक्रम के कारण जल बर्फ की गेंदों में बदल जाता है। इनके गिरने को ओलावृष्टि कहा जाता है। जब बादल में उपस्थित संपूर्ण जल कुछ ही समय में किसी स्थान पर गिरता है तो उसे बादल फटना कहते हैं। अचानक अधिक मात्रा में पानी आने से बाढ़ आ जाती है।

वर्षा लाने वाली हवाएँ मौसम विशेष में ही बनती हैं, इस कारण इन्हें मानसून कहते हैं। भारत में दक्षिणी-पश्चिमी मानसून सर्वत्र वर्षा करता है। मगर हर वर्ष हर स्थान पर एक समान वर्षा नहीं होती। मानसून पर ही अधिकांश कृषि निर्भर करती है, अतः मानसून का पूर्वानुमान लगाने का प्रयास अतिप्राचीन काल से ही होता रहा है। वैज्ञानिक उपकरणों के प्रचुर प्रयोग के कारण सटीक भविष्यवाणी संभव हो गई है। पेरु के समुद्री तट के पास जल की गर्म पट्टियाँ बनने से उत्पन्न एलनिनो प्रभाव भारतीय मानसून पर विपरीत प्रभाव डालता है। एक पुरानी कहावत को वैज्ञानिकों ने सच पाया है कि पूर्ण चंद्र का पीछा तो वर्षा भी करती है। अनुसंधान कर देखा गया कि पूर्णिमा या उसके आसपास पानी अधिक गिरता है।

### वर्षा की गंध

वर्षा की अपनी गंध होती है। लंबी गर्मी के बाद जब वर्षा की बूँदें धरती पर गिरती हैं तो पूरा वातावरण एक विशेष प्रकार की महक से भर जाता है। वैज्ञानिकों का कहना है कि वर्षा की गंध कई क्रियाओं का मिला-जुला प्रभाव होता है। भूमि में पाए जाने वाले जीवाणु एक्टिनोमाइसिट एक सुगंधित पदार्थ जिओस्मिन बनाते हैं। जब वर्षा का पानी गर्म रेत में जाता है तो वाष्प बनकर उड़ने लगता है। यह जल वाष्प जिओस्मिन के अणुओं को भी अपने साथ ले उड़ती है। जिओस्मिन के प्रति हमारी संवेदनशीलता बहुत अधिक होती है। जिओस्मिन अत्यंत कम मात्रा में भी वातावरण को महका देती है। जब तेज गर्मी पड़ती है और भूमि में जल की कमी होने लगती है तो उस विपरीत स्थिति से निपटने हेतु पादप अपनी जड़ों से कुछ तेल स्रावित करते हैं। वर्षा आने पर ये भी वातावरण में आ जाते हैं। सच पूछा जावे तो वर्षा आने से पूर्व ही वातावरण कुछ अलग गंध बिखेरने लगता है। वर्षा पूर्व की गंध का कारण ओजोन गैस होती है। वही ओजोन, जो वायुमंडल के ऊपरी भाग में रहकर सूर्य से आने वाली पराबैंगनी किरणों से हमारी रक्षा करती है। वही ओजोन, जिसकी वातावरण में बढ़ती मात्रा दिल्ली वालों के लिए खतरा बनती जा रही है। वर्षा से पूर्व वातावरण में फैले आवेशित कण कुछ मात्रा में ओजोन अन्य प्रकार की गंध को नष्ट करने के साथ स्वयं की गंध बिखेरती है।

## पृथ्वी को लील रही है अम्लीय वर्षा

वर्षा पर पृथ्वी का ही एकाधिकार नहीं है। हमारे अपने सौर मंडल में शुक्र ग्रह पर भी वर्षा होती है, मगर वहाँ जल के स्थान पर गंधक का अम्ल बरसता है। ऐसा शुक्र के वायुमंडल में गंधक के ऑक्साइडों की अधिकता के कारण होता है। पृथ्वी के कई भागों में भी अम्लीय वर्षा होती है। वर्षा जल में अम्ल की मात्रा वहाँ के वायुमंडल के प्रदूषित होने की मात्रा पर निर्भर करता है। कहीं-कहीं सांद्र गंधक के अम्ल के बरसने से बाहर सूखते कपड़ों के जलने के साथ ही मानव व जंतुओं के घायल होने की घटनाएँ हो चुकी हैं। अम्लीय वर्षा वर्तमान की एक बड़ी पर्यावरणीय परेशानी बन गई है। जल में बढ़ती अम्लता जलीय जीवों को लील रही है तो भूमि की बढ़ती अम्लता खेती व वनों को नष्ट कर रही है। ऐसे में मानव व जंतुओं का प्रभावित होना स्वाभाविक है। भवनों व अन्य संरचनाओं को नुकसान होने के साथ ताजमहल जैसे ऐतिहासिक स्मारक भी अम्लीय वर्षा के शिकार हो सकते हैं।

कुछ अम्ल वातावरण में स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होते हैं, मगर वह अधिक हानि नहीं पहुँचाते। अम्लीय वर्षा का कारण मानव निर्मित परिस्थितियाँ हैं। कोयले व पेट्रोलियम पदार्थों को जलाने पर कार्बन, गंधक व नाइट्रोजन के ऑक्साइड बनते हैं। ये ऑक्साइड जल में घुलकर अम्ल बनाते हैं जो वर्षा के जल के साथ भूमि पर आते हैं। यही अम्लीय वर्षा है। अब तक यह औद्योगिकी में विकसित देशों या उनके पड़ोसियों की परेशानी थी। अब भारत जैसे विकासमान देश भी इसकी गिरफ्त में आने को हैं। यदि नियंत्रित नहीं किया गया तो अम्लीय वर्षा पृथ्वी के संपूर्ण वातावरण को चौपट रखने की क्षमता रखती है।

अम्लीय वर्षा की उत्पत्ति के लिए हम सब जिम्मेदार हैं। हम वातावरण को अनुकूलित करने या परिवहन के साधनों के उपयोग में जितनी अधिक ऊर्जा का उपयोग करते हैं उतना ही जैविक ईंधन का उपयोग उसे उत्पन्न करने हेतु किया जाता है। स्पष्ट है कि ऊर्जा का संरक्षण ही अम्लीय वर्षा को रोकने का एकमात्र उपाय है। पैदल चलकर, व्यक्तिगत के स्थान पर सार्वजनिक वाहनों का उपयोग करके, पदार्थों का पुनःचक्रण कर हम अम्लीय वर्षा को रोकने में मददगार बन सकते हैं। वृक्षारोपण करें तो सोने पे सुहागा होगा।

## मेढक, मछली व केंचुए भी बरसते हैं

आकाश से केवल पानी ही बरसता हो, ऐसी बात नहीं है। कई बार वर्षा के पानी के साथ मेढक, मछली व केंचुए भी बरसते हैं। मेढक तो अलवणीय जल में रहते हैं, मगर बरसने वाली मछलियाँ भी समुद्री नहीं होकर अलवणीय जल की पाई गई हैं। मछलियाँ व मेढक किस स्थान से कैसे ऊपर पहुँचे, इस विषय में अभी तक संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं है। चक्रवात में मोटर वाहनों को उड़ा ले जाने की ताकत होती है। 2012 में अमेरिका में दो वर्ष की लड़की तूफान में उड़ गई जो लगभग 10 मील दूर सुरक्षित पाई गई।

भारत के केरल व श्रीलंका में कई बार लाल वर्षा हो चुकी है। श्रीलंका में हुई लाल वर्षा का कारण एक सूक्ष्म एक कोषीय शैवाल ट्रेकेलोमोनास को दिया। ट्रेकेलोमोनास के कवच में लोह युक्त लाल वर्णक पाया जाता है। केरल में कई बार हुई लाल वर्षा ने विश्व विज्ञान जगत में बहुत हलचल उत्पन्न की। पानी के साथ बरसी सूक्ष्म लाल रचनाओं को देखकर खून वर्षा की उपमा दे दी गई। कुछ वैज्ञानिकों ने लाल कणों की संरचना को पृथ्वी पर पाए जाने वाले किसी भी जीव से मेल नहीं खाने के कारण इनको पृथ्वी के बाहर से आया जीवन घोषित कर दिया था। सूक्ष्म कोशिकाओं में केंद्रक अनुपस्थित था। ये कोशिकाएँ उच्च ताप व उच्च दाब पर जनन कर संख्या में वृद्धि कर सकती थीं।

लाल वर्षा की घटना को आधार बना कर लिखी गई विज्ञानकथा पर राहुल सदाशिवन के निर्देशन में बनी मलयालम में बनी फिल्म को बहुत सराहना प्राप्त हुई थी। भारत सरकार के तीन विभागों ने उच्च स्तरीय अनुसंधान कर पता किया कि लाल सूक्ष्म रचनाएँ ट्रेंटेपोहलिआ नामक शैवाल के बीजाणु थे। ट्रेंटेपोहलिआ कवक के साथ मिलकर सहजीवी संरचना लाइकेन बनाती है। ये लाइकेन उस क्षेत्र के वृक्षों की छाल व नम भूमि पर बहुतायत से पाए जाते हैं।

## जब हुई दूधिया वर्षा

यह घटना छह फरवरी 2015 की है। अमेरिका के वाशिंगटन सहित लगभग 15 शहरों पर दूधिया रंग की वर्षा हुई। कारों व घरों की खिड़कियों पर चॉक जैसे श्वेत चूर्ण की परत चढ़ गई। किसी ने देवी-देवता को इसका श्रेय दिया या नहीं मगर चारों ओर घबराहट व्याप्त हो गई। अभी जून के मध्य में वाशिंगटन स्टेट विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने दूधिया वर्षा के रहस्य को सुलझाने का दावा किया है। रासायनिक विश्लेषण व अन्य जानकारियाँ जुटाकर वैज्ञानिकों ने बताया कि लगभग 750 मील दूर स्थित एक सूखी झील की मिट्टी के उड़कर वर्षा जल के साथ बरसने से दूधिया वर्षा हुई थी। कुछ वर्ष पूर्व मेक्सिको में भी ऐसी घटना हुई थी।

विश्व में सर्वाधिक वर्षा वाला क्षेत्र भारत का मेघालय अर्थात् बादलों का घर है। इसके मासिनराम व चेरापूँजी सर्वाधिक वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र हैं। एक वर्ष में 460 इंच वर्षा हो जाती है। विडंबना यह है कि यह वर्षा मानसून सत्र में ही होती है। वर्ष के शेष माह में यहाँ भी पानी की किल्लत बनी रहती है। आने वाले समय में वर्षा की मात्रा बढ़ने की संभावना है। वैश्विक ऊष्मायन के कारण पृथ्वी का औसत तापक्रम बढ़ रहा है। एक डिग्री तापक्रम बढ़ने से वायुमंडल की जल धारण क्षमता में सात प्रतिशत की बढ़ोतरी हो जाती है। हवा में अधिक पानी होगा तो बरसेगा भी अधिक। अतः आने वाले समय में बाढ़ आने के खतरे में बढ़ोतरी की संभावना है।

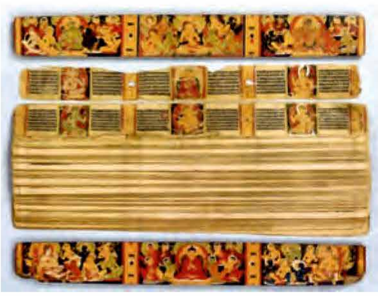

# पुस्तकें मनुष्य मात्र के लिए बेहतर उपकरण हैं


**डॉ. अमरकांत कुमार**

एम.एल.एस.एम. कॉलेज, दरभंगा, बिहार के हिंदी विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत।


पुस्तकों की दुनिया बेहद रंगीन और सुंदर है। यह ज्ञान की समस्त शाखाओं से आपूर्ण है। यहाँ मनुष्य की अद्‌भुत कल्पनाशीलता की शानदार अभिव्यक्ति मिलती है। यहाँ मानव के अत्युन्नत चिंतन और शृंखलाबद्ध विचारों का अंतहीन रुपहला संसार फैला हुआ है। इस जगह मनुष्य के कलात्मक-बोध और रंगों से खेलने की असंख्य कलाकृतियाँ अपना सम्मोहन बिखेरती मिलेंगी। यहाँ अतीत, वर्तमान और भविष्य का दर्पण आपसे बहुधा संवाद करता दिख जाएगा। यहाँ फुदकती जिंदगी की गिलहरियाँ समय देवता की शाखाओं पर गुदगुदी उत्पन्न करती नजर आ जाएँगी। यहाँ आपको आपके हृदय की हूक और टीस से साक्षात्कार हो सकता है। यहाँ आपके शाश्वत अनुसंधित्सु मन और उसकी निरंतर जिज्ञासा-वृत्ति से मुकाबला हो सकता हे। यहाँ आपके वैज्ञानिक अनुसंधानों और तार्किक प्रयत्नों की दुनिया बिखरी मिलेगी। आपकी जिज्ञासा का जवाब, आपके प्रयत्नों का परिणाम, आपकी कल्पना का विस्तीर्ण आकाश, आपके ज्ञान-ऊर्जा-शक्ति का साध्य—कुल मिलाकर—आपकी दुनिया, आपके परिवेश और आपके आभ्यंतर का सच पुस्तकों के इस बेहद सुंदर संसार में मिल जाएगा। सच में पुस्तक मनुष्य जीवन के सार्वभौम सत्य से साक्षात्कार कराती है। यह सच में मनुष्य की जिंदगी का प्रतिबिंब है। यकीनन यह आड़े वक्त में मनुष्य की पथ-प्रदर्शिका है। यह भौतिक सुख के साथ आत्मिक और आध्यात्मिक सुख की राह बताती है। यह नरक नहीं, स्वर्ग का मार्ग प्रशस्त करती है। पुस्तक मनुष्य के खुद की प्राप्ति है। यह जीवन के भटकन का अंत कर देती है। यह महज एक यात्रा नहीं, प्राप्ति है। यहाँ केवल जिज्ञासा या सवाल ही नहीं, उसका समाधान भी है। पुस्तक केवल आकुल-व्याकुल प्रश्नों का भंडार ही नहीं, उसकी अक्षय शांति का स्रोत भी है। इन्हीं तथ्यों को समेटकर 'पुस्तक' के संबंध में 'हिंदी विश्वकोश' में लिखा है कि— 'विश्व के प्रायः सभी देशों में पुस्तकों को पढ़कर उनसे लाभ उठाया जाता है। युद्ध, शांति, विकास और स्वतंत्रता सभी का यह महत्त्वपूर्ण साधन है। अन्न और वस्त्र के बाद पुस्तकों का महत्त्व सर्वोपरि है। ज्ञान का सर्जन, समन्वयन, संरक्षण और प्रसार व्यापक स्तर पर पुस्तकों से ही संभव है।' (खंड-8, पृ. 290)

जीवन में पुस्तकों के महत्त्व और पुस्तकालयों के मानव के विकास और समृद्धि में भूमिका पर विचार करते हुए विश्व के प्रसिद्ध विद्वान्‌ आर्नोल्ड इस्डैल ने लिखा है कि—'राष्ट्रीय पुस्तकालय का प्रमुख कर्तव्य संपूर्ण राष्ट्र के प्रगतिशील विद्यार्थियों को इतिहास और साहित्य की सामग्री सुलभ करना, अध्यापकों, लेखकों एवं शिक्षितों को शिक्षित करना है।' (हिंदी विश्वकोश-खंड-8, पृ. 293)। इस्डैल के इस कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पुस्तक केवल निरक्षरों को साक्षर बनाने और अनपढ़ों को महज

पढ़ाने के लिए ही जरूरी नहीं, यह अध्यापकों और पूर्ण शिक्षितों को ज्ञान की और कई शाखाओं से परिचित कराने के लिए भी आवश्यक है।

भारत में पुस्तकालय आंदोलन के अगुआ प्रसिद्ध भारतीय विद्वान् डॉक्टर एस.आर. रंगनाथन ने भी देश के सर्वांगीण विकास के लिए पुस्तक के महत्त्व को दृढ़ता से स्वीकार करते हुए राष्ट्रीय पुस्तकालयों की कर्तव्य-सीमा को निर्धारित किया। उनके अनुसार—'देश की सांस्कृतिक अध्ययन-सामग्री की सुरक्षा 'राष्ट्रीय पुस्तकालय' का मुख्य कार्य है। साथ ही देश के प्रत्येक नागरिक को ज्ञानार्जन की समान सुविधा प्रदान करना और जनता की शिक्षा में सहायता देने के विविध क्रियाकलापों द्वारा ऐसी भावना भरना कि लोग देश के प्राकृतिक साधनों का उपयोग कर सकें। यह निश्चित है कि यदि देश के प्रत्येक व्यक्ति का मस्तिष्क सृजनशील नहीं होगा तो राष्ट्र का सर्वांगीण विकास तीव्र गति से नहीं हो सकेगा।' (हिंदी विश्वकोश-खंड-8, पृ. 293) डॉ. रंगनाथन के इस कथन से एक तथ्य पूरी स्पष्टता से बाहर आया है कि पुस्तक न केवल जीवन के लिए जरूरी है, बल्कि राष्ट्र के सम्यक् विकास के लिए भी आवश्यक है। अगर किसी देश को तीव्रता से सभ्यों की श्रेणी में खड़ा होना है, तो उस राष्ट्र को पुस्तक का बेहद आदर करना होगा।

मैं यहाँ से सीधे मुड़कर संस्कृत की दो बहुप्रचलित उक्तियों की ओर बढ़ जाना चाहता हूँ, जिसमें जीवन के लिए पुस्तकों के महत्त्व को पूरे सामर्थ्य के साथ दर्शाया गया है। पहली उक्ति है—'पुस्तकी भवति पण्डितः', अर्थात् जो व्यक्ति पुस्तक रखता है वह पंडित हो जाता है। पुस्तकों से प्रेम करने वाला, पुस्तकों के बीच उठने-बैठने वाला व्यक्ति पंडित हो जाता है। बात बेहद मार्के की है। जिस तरह गेंद से खेलते-खेलते कोई खिलाड़ी और रंगों से खेलते-खेलते कोई चित्रकार बन जाता है, उसी प्रकार किताबों से रोज संग करने वाले, उसमें अंतर्निहित ज्ञान का अधिकारी या जानकार बन जाता है। हालाँकि कबीर जैसे प्रखर मेधा के धनी और परमज्ञानी भक्त, जिन्होंने प्रेम और ज्ञान को ईश्वर-प्राप्ति में एकमात्र सहायक माना है, ने मानो इस कथन का खंडन कर दिया—

*पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय।*
*ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।।*

मगर कबीर की दृष्टि यहाँ भौतिक न होकर एकनिष्ठ एकांतिक और आध्यात्मिक है, लेकिन मैंने जिस प्रसंग में 'पोथी' किंवा पुस्तक की बात छेड़ी है, वह भौतिक मार्गों से आगे बढ़ जाने की कहानी कहती है। यहाँ विमर्श की गुंजाइश बहुत अधिक है, किंतु इसे यहीं छोड़, मैं अगली उक्ति या मुहावरेदारी की ओर बढ़ता हूँ। दूसरी उक्ति पहली उक्ति के अर्थ को ही आगे बढ़ाती हुई दिखाई देती है। उक्ति है—'पुस्तकं गुरुणां गुरुः।' अर्थात् पुस्तक गुरुओं का गुरु है। बात भी सच्ची है! एक पुस्तक ही ऐसी है, जो गुरु की जिज्ञासा का भी समाधान करती है और शिष्य की जिज्ञासा का भी। गुरु जो पढ़ाता है, वह पुस्तकों से ही अपने समाधान की प्रामाणिकता सुनिश्चित करता है और तब वह शिष्यों को पढ़ाता है। गुरु को भी पुस्तक ही पढ़ाती है और शिष्य तो गुरु और पुस्तक—दोनों से पढ़ता ही है। इसलिए अंततः यह तय है कि पुस्तक ही गुरुओं का गुरु है। इन दोनों उक्तियों या मुहावरेदारियों ने जीवन में ज्ञानार्जन और मार्गदर्शन के लिए पुस्तक के आत्यंतिक महत्त्व को रेखांकित कर दिया है। उक्तियाँ यों ही नहीं चल निकलतीं, उसके पीछे जीवन का रस और दर्शन छिपा होता है। इस प्रसंग में पुस्तकों के बारे में भी हमें इसी निष्कर्ष बुद्धि से काम लेना चाहिए। तो, जीवन के लिए इतना खूबसूरत और जरूरी साधन—'पुस्तक' का आप इतिहास और उसकी विकास-यात्रा को नहीं जानना चाहेंगे? तो आइए, पुस्तकों की रोचक जन्म-कथा और उसके इतिहास पर थोड़ा विचार किया जाए कि पुस्तक जीवन के लिए कितनी आवश्यक थी और है—यह समझ सकें।

## पुस्तकों का इतिहास

विश्व में पुस्तकों का इतिहास प्रागैतिहासिक काल से ही प्रारंभ होता है। अनुसंधानों से पता चलता है कि भारत, चीन, जापान और कोरिया जैसे देशों में भोजपत्र, रेशम, चर्मपत्र, पपाइरस आदि पर खुदे हुए या सुलिखित प्रलेखों का प्रयोग बहुत हुआ करता था। भारत में इनके अतिरिक्त ताड़पत्र, पीपल या वटपत्रों के इस्तेमाल के प्रमाण भी मिलते हैं। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार, ईसा पूर्व 10,00 से 4000 वर्ष पहले प्रारंभिक लिपि का विकास हुआ था और इसी के साथ लेखन-आधार या फलकों का चयन भी हुआ होगा। हिंदी विश्वकोश-खंड-8 से पता चलता है कि बेबिलोनिया और निनवे में लगभग 5,500 ईसा पूर्व पत्थर या लकड़ी पर खुदे हुए प्रतीकों को

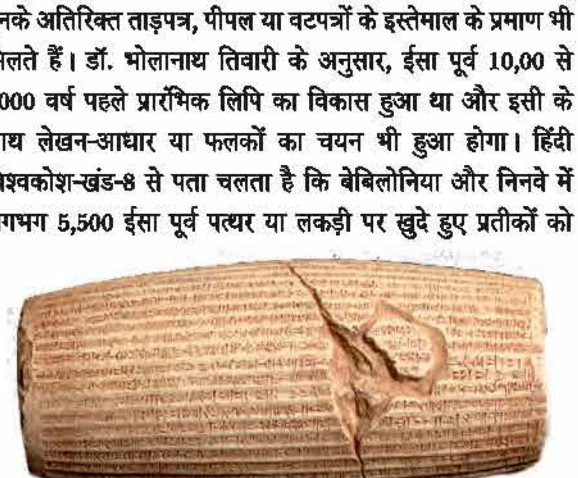

गीली मिट्टी पर दबाकर और सुखाकर फलक आकृति में मूल की अनुलिपियाँ तैयार की जाती थीं। 'नालंदा विशाल शब्दसागर' आप्टे के 'संस्कृत हिंदी शब्दकोश' में 'पुस्त' शब्द, जो पुस्तक का मूल शब्द है, का पहला ही अर्थ गीली मिट्टी का पलस्तर, लेप करना या चित्रकारी बताया गया है। प्रागैतिहासिक भारत में मानक लिपि, सुलेख कला और गणित की दशमलव पद्धति का विकास हुआ, लेकिन पुस्तकों की अनुलिपि बनाने की क्रिया के आविष्कार की कोई आवश्यकता नहीं समझी गई, क्योंकि तब सारी शैक्षिक गतिविधियाँ आश्रमों तक ही सीमित रहती थीं। भारत और मिस्र की

सभ्यता विश्व में सबसे प्राचीन है। प्रमाण मिलते हैं कि मिस्र के लोग नरकट सदृश पौधे, पपाइरस से एक प्रकार का कागज तैयार करते थे। दरअसल मिस्रियों ने ही पहली बार पुस्तकों के कच्चे माल की खोज की। रोम के लोगों ने पपाइरस के बेलनाकार गोलों का, जिनके सिरों

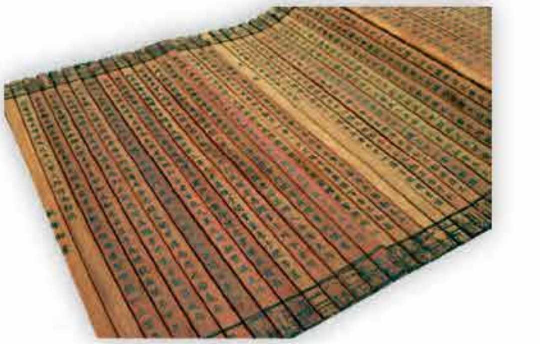

पर लकड़ी के बेलन होते थे, खूब प्रयोग किया। रोमनों ने इसके अतिरिक्त मेमने, बकरी के बच्चे या गाय के बछड़े की कोमल और शोधित खालों के प्रयोग भी खूब किए और इन पर नरकट या पर (पंख) की कलम से सँकरे स्तंभों में लिखा जाता था। चीनी लोग बेलनाकार रेशमी वस्त्रों के बेलनों का इस्तेमाल करते थे। ये लोग लकड़ी के फलकों का भी इस्तेमाल करते थे और इन्हें मिट्‌टी या धातु की मोहर से 'छापते' भी थे। भारत में खुदे या लिखे हुए भोजपत्रों को डोरे या कपड़े के टुकड़े से बाँधकर रखा जाता था। ताड़पत्रों और तेजपत्रों का इस्तेमाल भी डोरे या कपड़े में पिरोकर होता था (स्रोत हिंदी विश्वकोश खंड-8, पृ.290)। भारत में इस प्रकार की पांडुलिपियों को बड़ी गोपनीयता, सुरक्षा और आदर-सम्मानपूर्वक रखा जाता था। ये अत्यंत दुर्लभ हुआ करती थीं।

बेलनाकार और डोर में पिरोई हुई अथवा बँधी हुई भोजपत्रों की इन पुस्तकों के मिस्र, रोम, यूनान और भारत, चीन जैसे देशों में 300 ई. तक प्रयोग की प्रथा थी। चीनी आविष्कर्ता लुन (Lun) के आविष्कार के बाद पुस्तकों के एक नये रूप का विकास होता है। लुन ने 105 ई. में कागज का आविष्कार किया। लुन ने छालटी (छालों या पटसन के बने वस्त्र) या 'लिलन' नामक कपड़े की धज्जियों से गूदा तैयार किया और लकड़ी के साँचे पर कागज के ताव ढाले। लकड़ी के सुनिश्चित उत्कीर्ण ब्लॉकों से छापने का काम 770 ई. के कुछ पहले ही चीन, जापान और कोरिया में प्रारंभ हो गया था। विश्व की सबसे पुरानी पुस्तक 'हीरकसूत्र' चीन में 868 ई. में लकड़ी के ब्लॉकों से छपी थी। यह पुस्तक वास्तव में 'लिलन' के तावों को एक-दूसरे से जोड़कर बनाई गई थी, लंबाई में 16 फीट लंबा लपेटा हुआ, एक मुट्‌ठा है। धीरे-धीरे इन लिपटे हुए कागज के बेलनों का स्थान कागज और लेख्यचर्म (Vellum) के छपे और मुड़े हुए खंडों ने ले लिया, जिसे पुस्तकाकार सीया जा सकता था। यही आधुनिक पुस्तक का बाह्य रूप था।

पुस्तकों के विकास की नजर से देखें तो यह लकड़ी के ब्लॉकों से छपाई का काम अत्यंत नई प्रगति थी, किंतु कई और नजरिए से देखें तो यह काम पेचीदा भी था और अधिक महँगा भी। इसलिए आविष्कार की गति रुकी नहीं, और न ही संतोष कर लिया गया। 1041 ई. में पाइ शेंग (Pi sheng) नामक एक चीनी व्यक्ति ने मिट्‌टी के अक्षर ढाले और उसे पकाया। इन अक्षरों को स्थानांतरीय पद्धति से जोड़-जोड़कर कई पुस्तकें तैयार कीं। हिंदी विश्वकोश खंड-8 के अनुसार फिर 1224 में लकड़ी या धातु पर उत्कीर्ण अक्षर भी प्रचलित हो गए। इन स्थानांतरणीय अक्षरों से पहली पुस्तक दरअसल कोरिया में छपी। छापने की इन विधियों को यूरोपीय मिशनरियों के लोग सीखकर, यूरोप जाकर धार्मिक चित्र, ताश के पत्ते आदि छापे। हिंदी विश्वकोश खंड-8 के अनुसार—'यूरोप में स्थानांतरणीय अक्षरों से पहली पुस्तक संभवतः जर्मनी के जोहानीज गूटेनबर्ग (Johannes Gutanberg) ने छापी। यह पुस्तक लैटिन भाषा में 'बाइबिल' थी जिसे 'गूटेनबर्ग बाइबिल' या '42 पंक्ति बाइबिल' (पुस्तक के प्रत्येक स्तंभ में 42 पंक्तियाँ होने के कारण) कहते थे। इसकी लगभग 200 प्रतियाँ हाथ से बने कागज पर और कुछ प्रतिया 'लेख्यचर्म' पर भी छपीं। यह किताब 15 अगस्त, 1456 ई. के पूर्व तैयार हो चुकी थी। हाथ से चलाई जाने वाली मशीन तथा हाथ से ढाले गए सीसे के चल टाइपों का प्रयोग किया गया। किताब 12 इंच चौड़ी और 16 इंच लंबी थी।' (पृष्ठ 290) 1566 ई. में विश्व का पहला समाचार-पत्र 'गजेहा' वेनिस से प्रकाशित होना प्रारंभ हुआ।

उपर्युक्त समस्त प्रयत्नों से पुस्तक छपाई की दुनिया में एक उत्साह का जन्म हो चुका था। इसलिए अगले 50 वर्षों में चल टाइपों के प्रचार के कारण तकरीबन 30 हजार पुस्तकें इस विधि से छपीं। ध्यातव्य है कि इस काल की टाइपें सुलिखित अक्षरों से मिलती-जुलती होती थीं। 16वीं शताब्दी में ये टाइप और अधिक नाजुक अभिकल्पन में सुपाठ्य और सुंदर हो गई। अब पुस्तकों को अष्टपत्रक (Octave) का रूप दे दिया गया। इसके आगे की शताब्दियों में पुस्तक की दुनिया में रंगों और चित्रों का समावेश हुआ, जिससे पुस्तकें रंगीन और खूबसूरत हो गईं।

विश्व में आधुनिक युग का आरंभ औद्योगिक क्रांति से माना जाता है। हस्तमुद्रण द्वारा चल टाइपों को छापने का क्रम लगभग 400 वर्षों तक चला, किंतु औद्योगिक क्रांति के आगमन ने पुस्तकोद्योग को भी बड़ी त्वरा प्रदान की। साक्षरता और नवजागरण ने पुस्तकों की अप्रत्याशित माँग बढ़ा दी। आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। माँग के मुताबिक पुस्तक छपाई के सस्ते और तीव्र तरीकों का आविष्कार किया। 1800 ई. में स्टैनहोप (Stanhope) ने 'लौह-मुद्रण यंत्र' का आविष्कार किया। 1790 ई. में निकलसन ने बेलनीय मुद्रण के सिद्धांत का आविष्कार किया, जिससे छपाई की

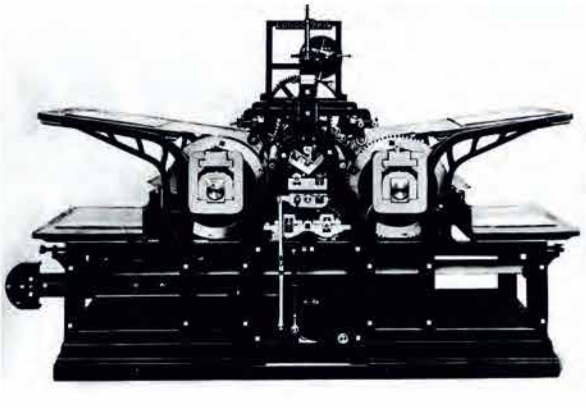

'रोटरी पद्धति' का विकास हुआ। वाष्पचालित मशीनों के विकास से गति और बढ़ गई। 1886 ई. में मेगेन्थेलर (Megenthaler) ने लाइनोटाइप मशीन-पद्धति का आविष्कार किया और इसके पश्चात् 1898 ई. में टालबर्ट लैंस्टन ने मोनोटाइप का आविष्कार किया, जिससे टाइप कैरेक्टरों को यंत्रों से ढाला और जोड़ा जाने लगा। अर्थात् टाइप व्यवस्था पूरी तरह यंत्रीकृत हो गई। जे.एन. नीप्से (J.N. Niepce) और डाग्यूरे (Daugure) द्वारा फोटोग्राफी का विकास होने पर चित्रों के छापने की अभूतपूर्व प्रगति हुई। 1840 ई. में गिलॉट ने इनसे लाभ उठाकर जिंक प्लेटों के निक्षारण की विधि विकसित की और 1851 ई. में स्कॉट आर्चर ने गीले कोलोडियन विधि से निगेटिव तैयार करने की विधि विकसित की। इसके बाद कन्टिन्यूअस टोन और हाफटोन (Half-tone) या जस्ते और ताँबे के ब्लॉकों का आविष्कार हुआ। ऑफसेट (Offset) मुद्रण तथा उत्कीर्णन (Gravure) मुद्रण के आविष्कार ने पुस्तकों के उत्पादन की तकनीक में विविधता ला दी। पुस्तकों की दुनिया बेहद रंगीन और खूबसूरत हो उठी।

## भारत में पुस्तकों की स्थिति

भारत में पुस्तकों का सम्मान अत्यधिक था। कई धर्मग्रंथों का तो ईश्वर की उक्ति या आदेश की तरह सम्मान था और एक सीमा तक आज भी है। 'हिंदी विश्वकोश' के संपादक-रचयिता नगेंद्रनाथ वसु ने लिखा है— 'प्रागैतिहासिक भारत में पुस्तकें विचार, ज्ञान और सौंदर्य के प्रसार का अत्यधिक लोकप्रिय माध्यम रही हैं। मानक लिपि, सुलेख कला और गणित की दशमलव पद्धति का विकास भारत में ही हुआ। भारतीयों ने ज्योतिष, गणित, भौतिकी, रसायन, राजनीति आदि अनेक विज्ञानों का गहन अध्ययन किया और विश्वप्रसिद्ध अनेक धर्मग्रंथों और पुस्तकों का प्रणयन किया। (हिंदी विश्वकोश भाग-4, बी.आर. पब्लिकेशन कॉर्पोरेशन)

भारत में पुस्तकों के इतिहास को तीन काल-खंडों में विभाजित कर समझा जा सकता है— 1. श्रुति काल, 2. पांडुलिपि काल, 3. प्रकाशित पुस्तकों का काल।

श्रुतिकाल में मूलतः 'ऋग्वेद' का काल लिया जाएगा। श्रुतिकाल में गुरु-मुख से वैदिक मंत्रों को शिष्य सुनकर कंठस्थ करते थे, इसलिए लिखित रूप में इसे संरक्षित रखने की आवश्यकता नहीं महसूस हुई। नगेंद्रनाथ वसु ने हिंदी विश्वकोश के खंड-4 में लिखा है कि—'पूर्वकाल में वेद को लिपिबद्ध करने का नियम नहीं था, किंतु जब वेदों के बहुत-से मंत्र लुप्त होने पर थे, तथा कौन मंत्र किस ऋषि ने प्रकाशित किया था, इसके निर्णय में गड़बड़ी थी, उस समय कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने भिन्न-भिन्न वेदमंत्रों को संग्रह कर उसका 'वेद-विभाग' किया था। इस वेद-विभाग के बाद ही संभवतः वेद को लिपिबद्ध करने की चेष्टा हुई थी।' (पृष्ठ 237)। प्रसिद्ध तंत्रग्रंथ—'योगिनी तंत्र' में वेदों के लिपिबद्ध करने का निषेध स्पष्ट है—वेदस्य लिखनं कृत्वा यः पठेत् ब्रह्महा भवेत्।

पुस्तकं वा गृहे स्थाप्यं वज्रपातो भवेद् ध्रुवम्।। (3 भा. 7 प.) चूँकि सुनकर ही इसे स्मरण रखने की प्रथा थी, इसीलिए वेदों का एक नाम 'श्रुति' भी पड़ा।

पांडुलिपिकाल में पांडुलिपियों के लेखन, वितरण, संरक्षण आदि अनेक बातों की ओर इशारा किया गया है। भारत में पांडुलिपियों को इतना पवित्र माना जाता था कि उसके लेखन, माप, परिमाण पत्र-पृष्ठादि को आध्यात्मिक आनुष्ठानिक महत्त्व के साथ देखा गया है। इससे पुस्तकों के जीवन में आत्यंतिक महत्त्व का पता चलता है। 'योगिनी तंत्र' में पुस्तकों (पांडुलिपियों) के आकार को ध्यान में रखने की बात की गई है—

*मानं वक्ष्ये पुस्तकस्य शृणु देवि समासतः।*
*मानेनापि फलं विन्द्यादमाने श्रीर्हता भवेत्।।*
*हस्तमानं मुष्टिमानभाबाहु द्वादशांगुलम्।*
*दशांगुलं तथाष्टौ च ततो ही न कारयेत।।*

अर्थात् पुस्तक का परिमाण हाथ भर, मुट्ठी भर, बारह अंगुल, दशांगुल अथवा आठ अंगुल होना चाहिए। इससे कम होने से काम नहीं चलेगा। यथोक्त परिमाण की पुस्तक गुणकर होती है। परिभाषा विपरीत होने पर श्रीभ्रष्ट होना पड़ता है।

किसी पुस्तक को किस तरह के पृष्ठ (पत्र) पर लिखा जाए, इसके संबंध में भी 'योगिनी तंत्र' निर्देश देता है—

*भूर्जे वा तेजपत्रे वा तालेवा ताड़ि पत्रके।*
*अगुरुपाणि देवेशि पुस्तकं कारयेत् प्रिये।।*
*संभवे स्वर्ण पत्रे च ताम्रपत्रे च शंकरि।*
*अन्यवृक्ष त्वचिदेवि तथा केतकि पत्रके।।*
*मार्त्तण्डपत्रे रौप्ये वा वटपत्रे वरानने।*
*अन्य पत्रे वसुदले लिखित्वा यः समभ्यसेत्।।*
*स दुर्गतिमाप्नोति धनहानिर्भवेत् ध्रुवम्।*

भोजपत्र, तेज पत्र और ताड़ पत्र पर पुस्तक लिखी जाती है। संभव रहने पर सुवर्ण पत्र, ताम्रपत्र, केतकी पत्र, मार्तण्ड पत्र, रौप्य

पत्र व वट पत्र पर पुस्तक लिखी जाती है। एद्‌भिन्न, जो अन्य पत्र पर पुस्तक लिखकर अभ्यास करते हैं, वे पीछे दुर्गति को प्राप्त होते हैं। पुस्तक के अक्षरों में युगानुरूप भिन्न-भिन्न देवताओं के वास की कल्पना की गई है। सतयुग में शंभु, द्वापर में प्रजापति, त्रेता में सूर्य और कलियुग में स्वयं श्रीहरि लिपि-अक्षरों में निवास करते हैं (हिंदी विश्वकोश खंड-4, पृ. 235)

धर्मसूत्र के समय से लिपिकार की उत्पत्ति हुई। पाणिनि व्याकरण से पता चलता है कि उनके पहले भी पटल, कांड, पत्र, सूत्र और ग्रंथ आदि शब्द प्रचलित थे। ग्रंथ के विशेष अंश का नाम पटल, पत्र कांड इत्यादि विभागशः लिखे जाते और उसे सूत्र में एक साथ पिरोए जाते थे। इसी पिरोने के कारण 'ग्रंथ' कहा गया। पहले ताल पत्र, भुर्जपत्र, ताड़िपत्र, वल्कल आदि में लिखने की रीति थी, जो आज भी 'पोथी' नाम से जानी जाती है। वे पोथियाँ जहाँ रखी जाती थीं, उसे 'ग्रंथकुट्टी' कहा जाता था। ई. पूर्व 3000 वर्ष पहले आर्यों के आगमन के साथ भोजपत्र और ताड़पत्र पर ग्रंथ लिखे जाते थे। छठी शताब्दी ई. पूर्व प्राचीन काल में बुद्ध और महावीर के विहारों और संघारामों में या जैन मठों में हजारों ग्रंथ सुरक्षित रहते थे। बौद्ध काल के तक्षशिला और नालंदा विश्वविद्यालयों में विशाल ग्रंथागार होने के प्रमाण मिलते हैं। चीनी यात्री फाहियान, ह्वेनसांग और इत्सिंग ने अपने यात्रा वृत्तांतों में नालंदा विश्वविद्यालय के ग्रंथागार की भूरिशः चर्चा की है। एक संकेत से पता चलता है कि ह्वेनसांग 22 घोड़ों पर लादकर 124 सूत्र और 520 खंडों में विभक्त दूसरे-दूसरे ग्रंथ ले गए। बख्तियार खिलजी ने सन् 1205 ई. में नालंदा का पूर्ण विध्वंस कर दिया। विक्रमशिला विश्वविद्यालय का पुस्तकागार भी अत्यंत समृद्ध था, पर बख्तियार खिलजी ने इसे भी ध्वस्त-नष्ट कर दिया। जिस तरह जूलियस सीजर ने अलेक्जेंड्रिया पर आक्रमण कर 47 ई. पूर्व में 70,000 (सत्तर हजार) ग्रंथों से भरे पुस्तकालय को जलाकर वहाँ की ज्ञान-समृद्धि को नष्ट कर दिया था, उसी प्रकार नालंदा और विक्रमशिला के विशाल और अति समृद्ध ग्रंथागारों को बख्तियार खिलजी ने नष्ट कर यहाँ के ज्ञान-वैभव को ही समाप्त कर दिया। बताया जाता है कि विक्रमशिला में अठारह महीने तक पुस्तकालय में आग लगी रही। यह भारतीय ज्ञान की बड़ी क्षति थी।

भारत में छपाई की आधुनिक पद्धति का प्रारंभ गोवा में 1556 ई. में हुआ। इस दृष्टि से भारत अमेरिका से एक शताब्दी आगे रहा। 1558 ई. में मिशनरियों ने पहले कोल्लम और बाद में कोचीन में 'हस्तदाव मुद्रण यंत्र' स्थापित कर तमिल, देवनागरी और कन्नड़ भाषा में धार्मिक साहित्य छापना आरंभ किया। अठारहवीं शताब्दी के अंत तक मुद्रण कला का प्रचार जनसाधारण में हुआ और जनसामान्य की पुस्तकों का भारत में प्रकाशन शुरू हुआ। बाद में बंबई के 'वेंकटेश मैपलिथो प्रेस' और उसके बाद 'वेंकटेश स्टीम प्रेस' ने हिंदू धर्म के साहित्य के प्रकाशन का वैसे ही जिम्मा उठा लिया जैसे कालांतर में गीता प्रेस ने उठा रखा है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद इस तकनीक में काफी सुधार आया। जिल्द सज्जा सुंदर हो उठी। स्वतंत्रता के बाद पंचवर्षीय योजनाओं ने साक्षरता की वृद्धि की। देश में औद्योगीकरण हुआ। पुस्तकोद्योग आज प्रमुख उद्योग बन गया है। सन् 1957 ई. में प्रतिलिप्याधिकार अधिनियम बन जाने के बाद भारत समेत पूरे विश्व में पुस्तकोद्योग में गुणात्मक परिवर्तन आए हैं। इससे पूर्व 16 सितंबर, 1955 को यूनेस्को समझौते से पूर्व 1886 ई. से लेकर 1955 ई. 'यूनिवर्सल कॉपीराइट कंवेंशन' तक सात समझौते हुए। यूनेस्को (शिक्षा, विज्ञान, संस्कृति-संघटन) के समझौते में 40 देशों ने पहले हस्ताक्षर किए और 23 अप्रैल, 1995 ई. तक सदस्य देशों की संख्या 100 से ऊपर हो गई। यूनेस्को समझौते ने विश्व में पुस्तक और पुस्तकालय आंदोलन में कॉपीराइट को स्थिर कर दिया। इससे पुस्तकालय आंदोलन में नेशनल लाइब्रेरियों को बेहद समृद्ध बना दिया। 23 अप्रैल, 1995 से पूरी दुनिया में विश्व पुस्तक दिवस तथा कॉपीराइट दिवस मनाया जाता है। यह लोगों में पढ़ने की प्रवृत्ति बढ़ाने और खासकर बच्चों में पुस्तक पढ़ने की प्रवृत्ति बढ़ाने के उद्देश्य से किया जाता है। इसका दूसरा उद्देश्य बौद्धिक संपदा को कॉपीराइट संरक्षित करना और पुस्तक-प्रकाशन को बढ़ावा देना है। इस दिन 'यूनेस्को' प्रतिवर्ष किसी एक शहर को विश्व पुस्तक राजधानी का दर्जा देता है। अभी स्लोवानिया की राजधानी 'लुबजाना' विश्व पुस्तक राजधानी है। इसके बाद ब्यूनस आयर्स (अर्जेंटीना) होगा।

15वीं शताब्दी के बाद सार्वजनिक पुस्तकालयों के लिए दुनिया भर में आंदोलन चले। हर देश में राष्ट्रीय, सार्वजनिक, अनुसंधान, चिकित्सा पुस्तकालयों की नींव पड़ी। कॉपीराइट ने इन पुस्तकालयों को समृद्ध किया। पुस्तकालयों खासकर नेशनल लाइब्रेरियों का उद्देश्य देश की जनता में बौद्धिक क्षमता का विकास करना माना गया। फलतः पुस्तकों से आमजन का लगाव बढ़ता गया। आज विश्व-भर के पुस्तकालयों में करोड़ों किताबें संगृहीत हैं। ये किताबें और समृद्ध पुस्तकालय हमारी बौद्धिक संपदा के प्रमाण हैं। आज पुस्तकें हर व्यक्ति के लिए बेहतर उपकरण बन गई हैं। खाना और कपड़े के बाद सबसे जरूरी हिस्सा जिंदगी का बन गई हैं पुस्तकें। शहर से लेकर सुदूर देहात तक सबको अनिवार्य शिक्षा देने में पुस्तक की भूमिका सराहनीय है। 15000 से अधिक शीर्षकों की पुस्तकें भारत में आज प्रतिवर्ष छपती हैं, लाखों की संख्या में।

इस सबके बावजूद इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का पुस्तकों पर हमला हुआ है। लोग कयास लगाते हैं कि पुस्तकों की पाठकीयता घटती जा रही है। बाजारवाद ने पुस्तकों को स्तरहीनता और मूल्य की अधिकता को बढ़ावा देकर पाठकों को गुमराह करना चाहा है। किंतु इस सबके बावजूद, स्तरीय पुस्तकों की पाठकीयता न तो कभी खत्म होगी, न कम होगी। पुस्तक लिखित दस्तावेज है। इसे कौन झुठला सकता है? इसकी जरूरत हमें हमेशा पड़ती रहेगी।

# शांतिनिकेतन का वर्षा-उत्सव

**जयप्रकाश सिंह बंधु**

(4 जनवरी, 1968)

दुर्गापुर (पश्चिम बंगाल)

**शिक्षा :** एम.ए. (हिन्दी, विश्वभारती, शांतिनिकेतन), बी.एड.

**संप्रति :** अध्यापन व स्वतंत्र लेखन।

**प्रकाशन :** कविताएँ, व्यंग्य, लेख, बाल कहानियाँ, अनुवाद आदि प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं (संडे मेल, वागर्थ, बाल भारती, जनसत्ता, जनपथ, साहित्य अमृत आदि) में प्रकाशित।

**संपर्क :**

*jpsbandhu@gmail.com*


वर्षा ऋतु के आगमन पर मनाया जाने वाला यह एक 'ऋतु उत्सव' है। वर्षा ऋतु सदियों से अपने सौंदर्य से कवियों को आकर्षित करती रही है। इसे ऋतुओं की रानी कहा गया है। यह धरती को हरा-भरा कर समृद्ध कर देती है। क्या कवि, क्या किसान, पूरा का पूरा जनमानस ही इसके आकर्षण में डूब जाता है।

कवि का तो प्रकृति से प्रगाढ़ संबंध होता ही है। वरन् कहें कि प्रकृति ही व्यक्ति को कवि बनाती है तो अतिशयोक्ति न होगी। यही कारण है कि रवींद्रनाथ कलकत्ता के कोलाहल से भाग निकले, क्योंकि प्रकृति उन्हें रोमांचित करती रहती थी। वे गाँव के व्यक्ति थे। नदी, पहाड़, गाँव एवं वहाँ का सरल जीवन, पेड़-पौधों में उनका मन खूब रमता था। घुमंतू प्रवृत्ति के कारण उन्होंने खूब यात्राएँ कीं। जहाँ से भी, जो अच्छा मिल जाता था, उसका वे संग्रह कर लिया करते थे और शांतिनिकेतन रूपी अपनी प्रयोगशाला में उसको अमलीजामा पहनाते थे। उनकी इसी प्रवृत्ति के कारण हमारा यह शांतिनिकेतन विविध खूबियों से समृद्ध होता चला गया।

गुरुदेव को काशी व अन्य देव-स्थलों पर ऋतु-उत्सवों को देखने का अवसर मिला था। वे इसका प्रारंभ शांतिनिकेतन में भी करना चाहते थे। इसकी चर्चा उन्होंने क्षितिज मोहन से की थी। सन् 1908 ई. में क्षितिज मोहन बाबू ने कवि-चर्चा को ध्यान में रखकर पहली बार 'वर्षा-मंगल-उत्सव' का आयोजन कवि की अनुपस्थिति में किया। वर्षा के आगमन पर चारों ओर मंगल ही मंगल छा जाता है, परंतु इसे उत्सव के रूप में देखने का यह पहला अवसर था। तैयारी विशेष रूप से की गई थी। श्री सुधीरचंद्र कर के अनुसार दीन बाबू ने कवि विद्यापति रचित 'ए भरा बादर माह भादर' गीत को गाया। वेद गान से पूरा वातावरण आध्यात्मिक हो उठा। आचार्य विधुशेखर शास्त्री ने भी संस्कृत में श्लोक

पढ़ा। छात्र-छात्राओं ने विशेष रूप से नीले-पीले वस्त्र पहन, सज-धजकर, प्रकृति-उत्सव में शामिल होकर, इस 'वर्षा-मंगल-उत्सव' को गरिमामय बना दिया था।

इसके बाद सन् 1929 ई. में यह उत्सव कलकता में जोरासांको वाले ठाकुरबाड़ी में मनाया गया। सन् 1922 ई. में रवींद्रनाथ ने वर्षा-मंगल-उत्सव पर अपनी तीन कविताएँ—झूलन, वर्षामंगल और निरूपमा की आवृत्ति की। गुरुदेव ने इस उत्सव को और अधिक यथार्थ रूप सन् 1936 ई. में दिया। इस उत्सव को 'पल्ली-सेवा' (यानी ग्राम-सेवा) से जोड़ते हुए भुवनडांगा के तालाब के पुनरुद्धार का फैसला लिया। छात्र, छात्राओं एवं कर्मचारियों के दल ने मिलकर तालाब को कीचड़ से मुक्त किया, उसे नई शक्ल दी। आज भी यह तालाब जनसेवा कर रहा है। निःसंदेह वर्षा में इस तरह की जमीनी कार्यवाही का आदर्श उपस्थित कर कवि ने उत्सव को कोरा पोंगापंथी व रूढ़िवादी बनने से बचाया। यह उत्सव आज भी शांतिनिकेतन में प्रतिवर्ष सावन के अंतिम सप्ताह में किसी भी दिन को निश्चित कर विधि-विधान से मनाया जाता है।

ऋतुओं को उत्सव के रूप में देखने की यह कोशिश निश्चित रूप से विद्यार्थियों व सब में प्रकृति-प्रेम का संस्कार डालती है। वर्षा ऋतु के अवसर पर यहाँ गाया जाता है—

*ऐसो श्यामल सुंदर*
*आनो तब तापहरा तृषाहरा संगसुधा*
*विरहनी चाइया आछे आकासे।*

वर्षा-उत्सव का ही विस्तार रूप है—शांतिनिकेतन का 'वृक्षारोपण' और 'हलकर्षण-उत्सव'। धरती को हरा-भरा रखने के लिए ही कवि ने वर्षा-उत्सव का शुभारंभ किया था। प्रकृति मनुष्य का अभिन्न अंग है। पेड़-पौधे ही समाज के रक्षक हैं, सच्चे सखा हैं। प्रकृति के मनोरम वातावरण में जीवन का आनंद ही बदल जाता है। इसका साक्षात् प्रमाण है—पेड़-पौधों, लता-कुंजों से आच्छादित यह शांतिनिकेतन। कवि दूरदर्शी थे। आने वाली पीढ़ी में वृक्षारोपण की परंपरा को जीवित रखने के लिए ही उन्होंने सन् 1928 ई. में इसे उत्सव की शक्ल दी थी। इस वर्ष गौर-प्रांगण में पहली बार वृक्षारोपण-उत्सव मनाया गया।

शांतिनिकेतन में वृक्षारोपण-उत्सव मनाने की परंपरा कुछ इस प्रकार से है—सबसे पहले वह स्थान तय किया जाता है जहाँ प्रतीकात्मक रूप से एक शिशु-वृक्ष की पुनर्स्थापना की जाती है। सृष्टि के पाँचों तत्त्वों (मिट्टी, जल, प्रकाश, गगन और वायु) की पूजा होती है। पाँच छात्रों को सजाकर सृष्टि के पंचभूत बनाए जाते हैं। फिर उस विशेष शिशु-वृक्ष को बड़ी शान से पालकी में बिठाया जाता है, मानो वह कोई विशिष्ट मेहमान हो। फिर समूह-गान करती यात्रा निर्दिष्ट स्थल की ओर चल पड़ती है जहाँ उस पौधे का रोपण किया जाना होता है। नए शिशु पौधे के आगमन पर यहाँ गीत गाया जाता है—

*आय-आय आमादेर आँगने*
*अतिथि बालक तरू-दल मानवेर स्नेहे संधाने चलो*
*चलो आमादेर घरे चलो।*

अब तो यह उत्सव रवींद्र-स्मृति से जुड़ गया है। यही कारण है कि 22, श्रावण जो कि रवींद्र का महाप्रयाण दिवस (मृत्यु दिवस) है, को यह उत्सव मनाया जाता है।

वृक्षारोपण-उत्सव के दूसरे ही दिन हलकर्षण-उत्सव श्रीनिकेतन में हर वर्ष संपन्न होता है। भारतीय प्राचीन परंपरा रही है कि यहाँ के राजा वर्ष में एक बार कृषक जरूर बनते थे, और उस दिन विशेष रूप से सजे-धजे बैल से खेती कर खेती-बारी की मर्यादा की रक्षा करते थे। राजा जनक ने भी हल चलाते समय ही सीता को पाया था। हलकर्षण

से ही धरती सोना उगलती है। भारतीय संस्कृति के रक्षक लेखक जयशंकर प्रसाद ने भी प्रसिद्ध कहानी 'पुरस्कार' में कोशल के राजा को हल चलाते हुए, कृषक बनते दिखाया है। अपने राजा को इस रूप में देखकर प्रजा खुशी के मारे मंगल-ध्वनि करती है। इसी आदर्श को आगे बढ़ाने के लिए, गाँवों की सुंदरता को वापस लाने के लिए कवि ने श्रीनिकेतन की स्थापना की थी।

गाँधी, विनोबा भावे, रवींद्रनाथ सबकी दृष्टि बड़ी व्यापक व सटीक थी। खेती करना समाज में हेय दृष्टि से नहीं देखा जाना चाहिए। इसके प्रति कवि बेहद सजग थे। इसलिए उन्होंने पल्ली-सेवा पर काफी जोर दिया। उनके आह्वान पर सब छात्र-छात्राएँ हाथों में कृषि के औजार लेकर खेतों में उतर पड़े। गीत गाया गया—'माटी की पुकार है, लौट चलो खेतों की ओर।' रवींद्र इस उत्सव को सीता-यज्ञ कहा करते थे। इस उत्सव को नंदलाल बसु ने फ्रेस्को-चित्र में अंकित किया है जो आज भी श्रीनिकेतन के उत्सव-मंच की दीवार पर स्मृति-स्वरूप अंकित है। इस चित्र में रवींद्रनाथ, एलमहर्स्ट, विधुशेखर शास्त्री के साथ-साथ रवींद्र-गीत—'फिरे चलो माटीर टाने' अंकित है।

# दिल्ली में न्यास की पुस्तक का लोकार्पण

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा प्रकाशित एवं सुश्री अचला मौलिक, आइएएस (सेवानिवृत्त) द्वारा लिखित पुस्तक 'डेंजरस डिस्पैचेस' (उपन्यास) का गत 26 अप्रैल, 2016 को नई दिल्ली के इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में लोकार्पण किया गया।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय के उच्चतर शिक्षा विभाग के सचिव, श्री विनय शील ओबेराय, आइएएस ने पुस्तक का लोकार्पण किया। अपने उद्बोधन में श्री ओबेराय ने पुस्तक को 'जानकारीपूर्ण' एवं 'रोशन करने वाला' के रूप में निरूपित करते हुए कहा कि, "यह पुस्तक हमारे सामने कुछ वैसी बड़ी घटनाओं को सामने लाती है जो समकालीन इतिहास को अब भी आकार प्रदान कर रही है।" उन्होंने पुस्तक को मनोरंजक, पढ़ने में कथात्मक आनंद देने वाला भी बताया।

इस अवसर पर कार्यक्रम के मुख्य अतिथि, भारत में रूस के राजदूत, श्री एलेक्जेंडर एम. कदाकिन ने कहा, "मैं आश्वस्त हूँ कि यह पुस्तक न केवल भारत बल्कि रूस के साहित्य में भी मील का पत्थर साबित होगी।" उन्होंने आगे कहा, "लेखिका ने बीती 20वीं सदी के इतिहास से गुजरते हुए भारतीय, रूसी, अफगान और अंग्रेजी चरित्रों वाले भिन्न-भिन्न लेकिन समान रूप से रोचक और नाटकीय कहानियों को, ऐतिहासिक संदर्भ में, बड़ी कुशलता से बुना और गुँथा है। उन्होंने कहा कि उपन्यास उस युग के पुरालेखीय दस्तावेजों के गहन शोध का परिणाम है, साथ ही आम लोगों के ज्ञान से परे, ऐतिहासिक तथ्यों का विश्लेषण भी।"

अपने संबोधन में न्यास की निदेशक डॉ. (श्रीमती) रीता चौधरी ने कहा कि अफगानिस्तान और मध्य-पूर्व की लड़ाइयों की पृष्ठभूमि में लेखिका ने बड़ी सूझ-बूझ से संघर्ष के मानवीय पहलू को उजागर किया है। उन्होंने आगे कहा कि मानवीय संबंध संघर्ष की तुलना में अधिक प्रासंगिक हैं क्योंकि वे न केवल एक राष्ट्र बल्कि व्यक्तियों के भाग्य को भी रूप और आकार प्रदान करते हैं। इस अवसर पर पूर्व विदेश सचिव, श्री के. रघुनाथ, आइएएस (सेवानिवृत्त) ने भी अपने संबोधन किए।

अफगानिस्तान, मध्य-पूर्व ईरान एवं बोस्निया जैसी युद्धरत भूमि में 20वीं सदी के संघर्ष की पृष्ठभूमि के विरुद्ध यह उपन्यास, 'डेंजरस डिस्पैचेस' प्रेम, स्वप्न और विश्वासघात की कहानी कहता है। घटनाएँ न केवल उपन्यास में चरित्रों के भाग्य को एक रूप-आकार देती हैं बल्कि राष्ट्रों के भाग्य को भी।

लेखिका मानव संसाधन विकास मंत्रालय के उच्चतर शिक्षा विभाग की पूर्व सचिव रही हैं। सुश्री मौलिक ने अनेक पुस्तकें लिखी हैं जिनमें से एक अन्य, 'पुश्किंस लास्ट पोएम' का न्यास से प्रकाशन हुआ था। उन्होंने रूसी साहित्य के प्रोन्नयन के लिए पुश्किन मेडल सहित सर्जेइ येसेनिन पुरस्कार भी प्राप्त किया है।

# डॉ. आंबेडकर पर संगोष्ठी

डॉ. भीमराव आंबेडकर के 125वें जन्म वर्ष समारोह के एक भाग के रूप में, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने विजयनगर श्री कृष्णदेवराय यूनिवर्सिटी के साथ मिलकर, 14 अप्रैल, 2016 को बेलचारी, कर्नाटक में 'भारत के संविधान में डॉ. बी. आर. आंबेडकर का योगदान : एक विहंगावलोकन' शीर्षक से एक संगोष्ठी का आयोजन किया। संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए, प्रख्यात विद्वान् प्रो. जी.बी. नंदन ने कहा, "हमें देश के हित के लिए डॉ. आंबेडकर के विचारों का पालन करना चाहिए। वे हमारे देश के महानतम विद्वानों में से एक थे जिनके विचार समाज की खुशहाली के लिए अब भी प्रासंगिक हैं।" यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर प्रो. एम.एस. सुभाष ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की। उन्होंने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि देश के दबे-कुचले वर्ग के लोगों के उत्थान के लिए उनका योगदान महत्त्वपूर्ण था।

इस अवसर पर प्रख्यात अकादेमिक डॉ. बी. सरोजा, प्रसिद्ध वकील श्री वीरेंद्र पाटील, यूनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार डॉ. राजेंद्र प्रसाद एवं डॉ. संता नायक ने भी अपने संबोधन किए। वक्ताओं ने प्रस्तावना के विशेष संदर्भ में, भारत के संविधान की रचना में डॉ. आंबेडकर की भूमिका पर विमर्श किया।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के संपादक श्री एच. नागराजप्पा ने कार्यक्रम का समन्वय किया।

# शारजाह में बाल पुस्तक चित्र प्रदर्शनी 2017

बाल पुस्तक चित्रों के छठे संस्करण, 2017 के लिए शारजाह में एक प्रदर्शनी का आयोजन होने जा रहा है। बाल कहानियों के व्यावसायिक चित्रों की इस वार्षिक कला प्रदर्शनी का आयोजन शारजाह चिल्ड्रंस रीडिंग फेस्टिवल द्वारा किया जाएगा। इस प्रदर्शनी में सभी आयुवर्ग के बच्चों के लिए सृजित व्यावसायिक चित्रों को प्रदर्शित किया जाएगा। प्रतिभागी द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले चित्रों की संख्या छह से अधिक नहीं होनी चाहिए और न ही तीन से कम। कलाकृति 40 सेमी. से अधिक लंबी न हो। कलाकृति के निर्माण में कलाकार रंग, शैली, तकनीक और थीम के चयन में स्वतंत्र होंगे। प्रतियोगिता के लिए भेजी जाने वाली कृति जेपीजी में हों जिन्हें ई-मेल से भेजा जाए। बगैर किसी फ्रेम के मूल कृति प्रदर्शनी प्रशासन को भेजी जाएँ। डाक पता बाद में दिया गया है।

कलाकार अपनी कलाकृतियों के साथ 50 शब्दों में आत्मपरिचय भेजें, साथ ही अपनी योग्यता, पूर्व में भागीदारी और पुरस्कार/सम्मान आदि का विवरण भी दें। प्रतियोगिता में सम्मिलित होने वाली कलाकृतियों का मूल्यांकन अंतरराष्ट्रीय ज्यूरी (अभिनिर्णायक) की एक चयन समिति द्वारा किया जाएगा।

प्रदर्शनी में भागीदारी हेतु प्रस्तुत कृतियों के प्रकाशन का अधिकार आयोजन समिति का रहेगा। प्रदर्शनी और कलाकारों के हित के लिए मीडिया कवरेज की व्यवस्था होगी।

निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम होगा और इसके विरुद्ध कोई अपील नहीं की जा सकेगी। प्रदर्शनी में कृतियों के प्रदर्शन का मतलब यह कतई नहीं है कि कलाकार को प्रदर्शनी में व्यक्तिगत रूप से भाग लेने का अधिकार होगा।

प्रदर्शनी प्रशासन भागीदार कृतियों के लिए केवल भीतरी (इनडोर) बीमा लागत 'कवर' करेगा और प्रज्ञप्त की गई कृतियों के पुनर्लदान/पुनर्नौपरिवहन लागत का भार उठाएगा।

प्रतिभागियों को यह पहले ही बताना होगा कि उनकी कृतियों का प्रकाशन किया जाए या नहीं। सहमति की स्थिति में प्रतिभागियों को संपूर्ण प्रकाशन विवरण (पुस्तक का नाम, विवरण तथा प्रकाशक का पता एवं प्रकाशन वर्ष) भेजना होगा।

**केवल बाल पुस्तकों के ही चित्र स्वीकार किए जाएँगे।**

**आवश्यक दस्तावेज व अन्य :**

- पासपोर्ट की प्रति, जो छह महीनों के लिए वैध हो,
- प्रतिभागी कलाकार के पासपोर्ट आकार के फोटो, जिसकी पृष्ठभूमि श्वेत हो,
- माइक्रोसॉफ्ट वर्ड फॉर्मेट में कलाकार का 50 शब्दों में आत्म जीवन परिचय,
- एक सूचना पत्र/शीट तथा भागीदारी वाली प्रत्येक कृति का हाई रेजोल्यूशन/ उच्च गुणवत्ता वाले छायाचित्र
- पुस्तक के बारे में 100 शब्दों में संक्षिप्त विवरण, जिनसे चित्र बनाए गए।
- अंतरराष्ट्रीय ज्यूरी द्वारा निर्मित एवं चयनित तीन सर्वोत्तम कृतियों के लिए विजेताओं को पुरस्कार प्रदान किए जाएँगे।

**अंतिम तिथि :**

- ई-मेल के द्वारा भागीदारी प्रपत्र एवं ID दस्तावेज को जमा करने की अंतिम तिथि : **15 जनवरी, 2017**
- डाक द्वारा भागीदारी हेतु कृतियों को जमा करने की अंतिम तिथि : **1 फरवरी, 2017**
- प्रदर्शनी का आयोजन : **अप्रैल, 2017**

# ज्ञान चतुर्वेदी को 'शरद जोशी सम्मान'

भारतीय विद्या भवन के तत्त्वावधान में, व्यंग्य ऋषि जोशी के 85वें जन्मदिवस पर डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी को पहला 'शरद जोशी सम्मान' प्रदान किया गया। यह सम्मान विगत 17 वर्षों से 'शरद संध्या' का आयोजन करने वाली संस्था 'शरद जोशी मित्र मंडल' ने हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड के सहयोग से किया। इसमें मोमेंटो के अलावा एक सम्मान-पत्र तथा एक लाख रुपये की राशि दी जाती है। पुरस्कार कहानीकार, व्यंग्यकार सूर्यबाला द्वारा प्रदान किया गया। इस आयोजन में अभिनेता यशपाल, अखिलेंद्र, अतुल तिवारी तथा शरद जोशी की बेटी नेहा शरद ने उनके लेखों का वाचन किया। सूर्यबाला ने ज्ञान चतुर्वेदी के पुरस्कार पर एक व्यंग्य लेख पढ़ा। ज्ञान चतुर्वेदी ने अपने वक्तव्य में कहा कि 'भविष्य में अवश्य ही मैं कुछ ऐसा लिखूँगा कि इस पुरस्कार के लायक बन सकूँ।' कार्यक्रम का संचालन 'नवनीत' पत्रिका के संपादक विश्वनाथ सचदेव ने किया।

## वातायन : पोएट्री ऑन साउथ बैंक पुरस्कार समारोह 2016

पिछले दिनों वातायन : पोएट्री ऑन साउथ बैंक पुरस्कार समारोह 2016 का आयोजन, विंडसर और मिडलैंड की बैरोनेस फ्लैदर, 'वातायन' के संरक्षक एवं गुजरात समाचार और एशियाई आवाज समाचार पत्र के संपादक श्री सी.बी. पटेल और गीतकार-गायिका और संगीतकार तान्या वेल्स की उपस्थिति में हाउस लॉर्ड्स के सभागार में किया गया। समारोह की अध्यक्षता इल्मी मजलिस, लंदन के अध्यक्ष एवं इतिहासकार जिष्य शकेब ने की।

प्रतिष्ठित वक्ताओं में शामिल थे—लेखक और 'वातायन' की संस्थापक, अध्यक्ष दिव्या माथुर, ब्रिटेन में गुजराती शिक्षण के अग्रणी संस्थापक, लेखक एवं शोधकर्ता प्रो. जगदीश दवे, लेखक और बीबीसी विश्व हिंदी सेवा की पूर्व प्रमुख डॉ. अचला शर्मा, यू- 3 आंदोलन की सदस्य एवं परिवार और मानसिक स्वास्थ्य सलाहकार मीरा चंद्रन, लेखक और काव्य रंग नॉटिंघम की अध्यक्ष जय वर्मा, लेखक और 'वातायान' कोषाध्यक्ष शिखा वार्ष्णेय। नेत्र सर्जन, फिल्म निर्माता, कवि और रेडियो-प्रस्तोता डॉ. निखिल कौशिक ने कार्यक्रम का संचालन किया।

प्रसिद्ध और अनुभवी कवयित्री डॉ. मधु चतुर्वेदी को वार्षिक वातायन काव्य पुरस्कार से सम्मानित किया गया जिन्होंने गीत, ग़ज़ल, खंड-काव्य, कविता और हाइकू की एक दर्जन से अधिक पुस्तकें लिखी हैं।

श्री योगेश पटेल को अंग्रेजी, गुजराती और हिंदी साहित्य में उनके असाधारण योगदान के माध्यम से कविता को बढ़ावा देने एवं विश्व साहित्य को समृद्ध बनाने हेतु अंतरराष्ट्रीय कविता साधना सम्मान दिया गया। विश्वप्रसिद्ध नामों के साथ 1969 से अंतरराष्ट्रीय कविता की दुर्लभ आवाजों का प्रकाशन किया है।

प्रतिष्ठित भारतीय कवि डॉ. कुँवर बेचैन को वातायन लाइफ टाइम अचीवमेंट अवार्ड से सम्मानित किया गया। वे कुल मिलाकर 33 पुस्तकों (गीत, ग़ज़ल, दोहा, हाइकू, मुक्त छंद महाकाव्य, उपन्यास, यात्रा वृत्तांत आदि) के लेखक हैं। सेवानिवृत्त हिंदी प्रोफेसर कुँवर बेचैन को भारत के राष्ट्रपति द्वारा भी सम्मानित किया जा चुका है।

मेजबान बैरोनेस फ्लैदर ने प्रतिभागियों का धन्यवाद किया। इस कार्यक्रम में ब्रिटेन के अनेक नामचीन विद्वान्, राजनीतिज्ञ, मीडियाकर्मी और कलाकार शामिल थे, जिनमें प्रमुख रहे, बैरोनेस पराशर, डॉ. हिलाल फरीद, प्रो. श्याम मनोहर पांडेय, प्रो. दया थुस्सू, जेरू राय, अरुणा अजित्सरिया, राकेश माथुर, उषा राजे सक्सेना, कादंबरी सक्सेना, तोषी अमृता इत्यादि।

## आंबेडकर जन्म-जयंती पर अहमदाबाद व्याख्यान कार्यक्रम का आयोजन

डॉ. बी.आर. आंबेडकर की 125वीं जयंती के उपलक्ष्य में न्यास द्वारा अहमदाबाद में एक साहित्यिक कार्यक्रम आयोजित किया गया। 'डॉ. बी.आर. आंबेडकर और उनका शिक्षा-सिद्धांत' विषय पर जाने-माने लेखक, विचारक, पत्रकार व संपादक श्री किशोर मकवाणा ने वक्तव्य प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि डॉ. आंबेडकर के लिए विद्या, आत्मसम्मान और शील—ये तीन उपास्य देव के समान थे। उनके मतानुसार विद्यालय और बुद्धिमता के बीच कोई संबंध नहीं है। शिक्षा दुधारी तलवार की तरह है, इसका उपयोग किस तरह किया जाए, इसका आधार हमारे विवेक पर है। आंबेडकर के समग्र जीवन में भारत-भक्ति के दर्शन होते हैं। शिक्षा, विद्या एवं राष्ट्र के प्रति अखंड भक्तिभाव, यही उनका जीवन था। लोग उन्हें मात्र संविधान के निर्माता के रूप में जानते हैं, परंतु वे इतिहासकार, लेखक, पत्रकार एवं राष्ट्रहित को प्राधान्य देने वाले एक अद्‌भुत व्यक्ति थे।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के अध्यक्ष श्री बल्देव भाई शर्मा ने अध्यक्षीय भाषण में आंबेडकर के जीवन के बारे में कहा कि देश के महापुरुषों को लोग अक्सर अपनी सुविधा के अनुसार कोई एक जाति, पंथ या संप्रदाय से जोड़कर उनके व्यक्तित्व को छोटा कर देते हैं, जबकि ये महामानवों के अनमोल प्रदान के लिए समग्र राष्ट्र उनके प्रति सम्मान रखता है तथा उनको नमन करता है। डॉ. आंबेडकर के जीवन का एक सिद्धांत था कि दुखी और अभावों में जी रहे मानवों की सेवा करना। श्री शर्मा ने कहा कि शिक्षा प्राप्त करके यदि हम समाज के दुखी या कमजोर लोगों के लिए कुछ नहीं करते हों तो हमारी शिक्षा व्यर्थ ही मानी जाएगी। शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान नहीं है, बल्कि शिक्षा शेरनी के दूध की भाँति है जो विद्यार्थी को गर्जना करना सिखाती है। श्री शर्मा ने कार्यक्रम में उपस्थित पत्रकारित्व के विद्यार्थियों को सलाह दी कि पत्रकारिता में सकारात्मकता का होना आवश्यक है, उसी से रचनात्मकता बाहर आती है।

कार्यक्रम के आरंभ में एनआईएमसीजे संस्था के निदेशक डॉ. शिरीष काशीकर ने स्वागत संबोधन किया और राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के गुजराती संपादक श्री भाग्येन्द्र पटेल ने प्रासंगिक उद्‌बोधन में न्यास की महत्त्वपूर्ण कार्यप्रवृत्तियों की जानकारी दी। अंत में कौशल उपाध्याय ने धन्यवाद-ज्ञापन किया।

# संघर्ष की इच्छा शक्ति भारतीय समाज की विशेषता है– बल्देव भाई शर्मा

## राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा प्रकाशित '1857 का लोक संग्राम और रानी लक्ष्मीबाई' तथा 'प्रार्थना' पुस्तकों का विमोचन

"भारत देश कभी भी पूरी तरह से विदेशियों का गुलाम नहीं रहा, कोई भी शासन हो, यहाँ का समाज पराधीनता के विरुद्ध सदैव संघर्ष करता रहा। धर्म अपनी रक्षा स्वयं कर लेता है, लेकिन इतिहास की रक्षा करना बहुत जरूरी है। इतिहास महज आँकड़े या कुछ दस्तावेज नहीं होता, यह राष्ट्रीय जीवन की प्रेरणा होता है।" यह उद्‌गार थे राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली के अध्यक्ष बल्देव भाई शर्मा के। वे जीवाजी विश्वविद्यालय के गालव सभागार में आयोजित राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा प्रकाशित दो पुस्तकों के लोकार्पण समारोह में अध्यक्षीय आसंदी से बोल रहे थे। इस समारोह में मुख्य अतिथि विश्वविद्यालय के कुलसचिव तथा इतिहासविद डॉ. आनंद मिश्र थे। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा ग्रामीण पत्रकारिता विकास संस्थान तथा जीवाजी विश्वविद्यालय के सहयोग से संपन्न इस कार्यक्रम में जिन दो पुस्तकों का विमोचन हुआ, वे थीं– '1857 का लोक संग्राम और रानी लक्ष्मीबाई', लेखक प्रमोद भार्गव तथा 'प्रार्थना', लेखक डॉ. सोमदत्त गौतम।

कार्यक्रम के प्रारंभ में डॉ. ए.एल. शर्मा, रविशेखर, डॉ. ए.के. मिश्र, श्रीमती आभा भार्गव, देव श्रीमाली और सिद्धार्थ शंकर गौतम ने अतिथियों व वक्ताओं का पुष्पों से स्वागत किया। अपनी पुस्तक 'प्रार्थना' की रचना प्रक्रिया के बारे में जानकारी देते हुए डॉ. सोमदत्त गौतम ने बताया कि जब तक विनम्रता नहीं होगी, तब तक शिक्षा नहीं मिलती और विनम्रता प्रार्थना से ही उपजती है। उन्होंने बताया कि किस तरह सन् 1998 में वे जब बीमार हुए तो उनके एक छात्र ने आस्था व विश्वास के साथ प्रार्थना की और वे स्वस्थ हो गए। यह पुस्तक उसी छात्र-ऋण से उऋण होने का प्रयास है। वरिष्ठ पत्रकार प्रमोद भार्गव ने सन् 1857 की क्रांति को महज सिपाहियों का विद्रोह या कुछ सामंतों का अपनी सत्ता बचाने का संघर्ष कहने

वालों को तथ्यों सहित जवाब दिया कि असल में वह आम किसान, मजदूर का संघर्ष था। उन्होंने बताया कि शिवपुरी का गोपालपुर किला लक्ष्मीबाई के जीवन का एक निर्णायक स्थल रहा है और इतिहासविद्‌ उसे ही विस्मृत कर देते हैं। उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास को राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में नए सिरे से लिखने की आवश्यकता पर बल दिया।

विमोचित पुस्तकों में से एक 'प्रार्थना' की समीक्षा करते हुए प्रख्यात गीतकार रामप्रकाश अनुरागी ने प्रार्थना और वंदना में भेद को विस्तार से परिभाषित करते हुए कहा कि पूरी दुनिया के सभी धर्मों व पूजा स्थलों में प्रार्थना एक महत्त्वपूर्ण विधि है जिससे इंसान की आत्मा का परमात्मा से मेल का मार्ग प्रशस्त होता है। शासकीय महाविद्यालय, शिवपुरी में इतिहास की विभागाध्यक्ष डॉ. संध्या भार्गव ने लक्ष्मीबाई को भारतीय स्वाभिमान और अस्मिता का प्रतीक निरूपित करते हुए कहा कि इतिहास न तो नीरस विषय है और न ही जटिल। प्रमोद भार्गव की पुस्तक साक्षी है कि तथ्यों को सही तरह से प्रस्तुत करने पर इतिहास नए प्रामाणिक रूप से आम लोगों के सरोकारों से जुड़ जाता है। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि डॉ. आनंद मिश्र ने अपने ओजस्वी उद्‌बोधन में इस बात पर ध्यान दिलवाया कि जहाँ-जहाँ इतिहास हमारी आस्था से जुड़ा है, वहाँ-वहाँ अंग्रेजों ने उस पर प्रश्न क्यों खड़े किए। इतिहास में कई राष्ट्र विरोधियों को महान निरूपित करना राष्ट्रीय चिंतन का विषय है। उन्होंने देश में राष्ट्रीयता की भावना पैदा करने की आवश्यकता पर बल देते हुए प्रार्थना के संस्कार, आस्था और विश्वास पर प्रकाश डाला।

आयोजन के अध्यक्ष श्री बल्देव भाई शर्मा ने अपने भाषण के प्रारंभ में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के प्रकाशन कार्यक्रम की जानकारी दी और कहा कि यह बात तथ्यों से परे है कि पुस्तकें कम पढ़ी जा रही हैं या फिर युवाओं का पुस्तकों के प्रति आकर्षण कम हो रहा है। उन्होंने पुस्तकों की कीमत आम लोगों की पहुँच से बाहर होने तथा किफायती पुस्तकें पाठकों तक न पहुँचने को पठन अभिरुचि के विकास में बाधा बताया। उन्होंने यह भी कहा कि भारत कोई भूखंड नहीं है जिस पर दुनिया के अलग-अलग हिस्सों से आ कर लोग रहने लगे। यह एकसमान संस्कृति और विचारों का पुराना देश है जिसका उल्लेख दुनिया के सबसे प्राचीन ग्रंथ 'ऋग्वेद' में है।

इस अवसर पर नगर निगम, ग्वालियर की ओर से प्रमोद भार्गव को रानी झाँसी की प्रतिमा देकर सम्मानित किया गया। कार्यक्रम के अंत में वरिष्ठ पत्रकार देव श्रीमाली ने अतिथियों, श्रोताओं तथा विभिन्न संस्थाओं के प्रति आभार व्यक्त किया। इसका संचालन राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के संपादक पंकज चतुर्वेदी ने किया।

## पंकज सुबीर के उपन्यास 'अकाल में उत्सव' पर विचार संगोष्ठी

कथाकार पंकज सुबीर के बहु प्रशंसित उपन्यास 'अकाल में उत्सव' पर केंद्रित विचार संगोष्ठी का आयोजन 'स्पंदन' द्वारा किया गया। कार्यक्रम में उपन्यास के दूसरे संस्करण का विमोचन भी किया गया। हिंदी भवन के महादेवी वर्मा सभागार में आयोजित विचार संगोष्ठी की अध्यक्षता हिंदी के वरिष्ठ कहानीकार, उपन्यासकार श्री महेश कटारे ने की। उपन्यास पर वरिष्ठ पत्रकार श्री ब्रजेश राजपूत तथा प्रशासनिक अधिकारी द्वय श्री राजेश मिश्रा तथा श्री समीर यादव ने अपने वक्तव्य दिए।

उपन्यास पर चर्चा की शुरुआत करते हुए श्री समीर यादव ने कहा कि उपन्यास की सफलता से यह बात सिद्ध होती है कि आज भी पाठक गाँव की कहानियाँ पढ़ना चाहते हैं। गाँव से हम सब किसी न किसी रूप में जुड़े रहे हैं। यह उपन्यास इस मायने में महत्त्वपूर्ण है कि इसने वर्तमान समय की एक बड़ी समस्या की न केवल पड़ताल की है बल्कि उसके मूल में जाने की और उसका हल तलाशने की भी कोशिश की है। राजेश मिश्रा ने अपने वक्तव्य में कहा कि उपन्यास का सबसे सशक्त पक्ष इसकी भाषा है। यह उपन्यास कहावतों, मुहावरों, लोक कथाओं और श्रुतियों की भाषा में बात करता हुआ चलता है। पत्रकार ब्रजेश राजपूत ने अपने वक्तव्य में कहा कि आम तौर पर अखबारों में गाहे-बगाहे और पिछले दिनों तो तकरीबन रोज छपने वाली किसानों की आत्महत्या की खबरें हम शहरी पाठकों को उतना ज्यादा परेशान नहीं करतीं जितनी सरकार और विपक्षी दलों को। 'अकाल में उत्सव' पढ़ने के बाद किसानों की ऐसी आत्महत्या की दुर्भाग्यपूर्ण खबरों को आप सरसरी तौर पर नहीं पढ़ पाएँगे। इसके बाद आप किसानों की मौत की सिंगल कॉलम खबर को पढ़कर बेचैन हो जाएँगे और पंकज के इस उपन्यास की घटनाएँ याद आएँगी। आप समझेंगे कि किसान पागलपने में आकर आत्महत्या नहीं करता। वरिष्ठ साहित्यकार श्री महेश कटारे ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि हिंदी की युवा साहित्यकार तथा पाठक का गाँव की ओर मुड़ना स्वागत योग्य कदम है। 'अकाल में उत्सव' एक उपन्यास नहीं है, यह एक यात्रा है, यात्रा उस त्रासदी की जो भारतीय किसान के हिस्से में आई है। पंकज सुबीर ने बड़े विश्वसनीय तरीके से किसान के जीवन का पूरा चित्र प्रस्तुत कर दिया है। श्री कटारे ने कहा कि उपन्यास को पढ़ते समय लेखक का शोध पर किया गया श्रम साफ महसूस होता है और वही कारण है कि इतने कम समय में इस उपन्यास को इतनी लोकप्रियता प्राप्त हुई है। कार्यक्रम का संचालन करते हुए 'स्पंदन' की संयोजक डॉ. उर्मिला शिरीष ने जानकारी दी कि किसानों की समस्या पर केंद्रित पंकज सुबीर का यह उपन्यास इस वर्ष की सबसे चर्चित कृति है, हिंदी के सभी वरिष्ठ साहित्यकारों ने न केवल इसे पसंद किया है बल्कि अपनी सकारात्मक प्रतिक्रिया भी व्यक्त की है।

## डॉ. रघुवीर चौधरी को ज्ञानपीठ सम्मान

पिछले दिनों भारत के राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी ने गुजरात के वरिष्ठ साहित्कार डॉ. रघुवीर चौधरी को 551वें ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया। पाँच दिसंबर 1938 को गांधीनगर के बापुरा में जन्मे डॉ. चौधरी को वर्ष 2015 के लिए यह पुरस्कार दिया गया। इससे पहले सन 1977 में उन्हें उपन्यास 'उपरवास' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार मिल चुका है। डॉ. चौधरी गुजरात विश्वविद्यालय से हिंदी विभाग के अध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त होकर इन दिनों स्वतंत्र लेखन कर रहे हैं। वह दिव्य भास्कर, संदेश और जन्मभूमि जैसे गुजराती अखबारों में नियमित स्तंभ लिखते रहे हैं। उनकी अब तक 80 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें उपन्यास के अलावा कविता संग्रह, नाटक, कहानी संग्रह और पत्रकारिता संबंधी किताबें शामिल हैं। वह भारतीय प्रेस परिषद के सदस्य तथा पच्चीसवें भारतीय फिल्म समारोह के अध्यक्ष भी रह चुके हैं। इसके अलावा वह गुजराती साहित्य परिषद के भी अध्यक्ष रहे हैं।

दिल्ली में संपन्न समारोह में भारतीय ज्ञानपीठ की प्रवर समिति के अध्यक्ष डॉ. नामवर सिंह के अलावा भारतीय ज्ञानपीठ के अध्यक्ष न्यायमूर्ति विजेन्द्र जैन, प्रबंध न्यासी अखिलेश जैन और निदेशक लीलाधर मंडलोई आदि मौजूद थे। पुरस्कार प्राप्त करने के बाद डॉ. चौधरी सपत्नीक राष्ट्रीय पुस्तक न्यास कार्यालय में भी पधारे, जहाँ राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के अध्यक्ष श्री बल्देव भाई शर्मा ने उनका स्वागत किया।

# घर से गली सुरक्षित

तेलुगु कहानी... अनुवाद : जी. परमेश्वर

पहले ही बंदर, तिस पर ताड़ी का नशा। ऊपर से बिच्छू का दंश। ऐसी हालत में क्या गुजरती होगी उस पर।... भगवान जाने!

'वरालम्मा' के नाम से प्रसिद्ध वरलक्ष्मम्मा की स्थिति भी बिलकुल ऐसी ही थी। वरालम्मा पहले से ही बी.पी. की मरीज है। दस दिन से नौकरानी गायब। घर का काम-काज सँभालना उसके बस की बात नहीं थी। समय पर नाश्ते-भोजन का प्रबंध न होने के कारण पतिदेव नाराज होकर दफ्तर चले गए थे।... इन सभी कारणों से वह दुखी थी।

बेरोजगार बेटे के पूछने पर उसने सौ रुपये नहीं दिए... बात यह है कि चार साल से बेकार बैठा बेटा बुरी संगत में पड़कर बिगड़ने लगा था। इस कारण वह चिंतित थी।

कुल मिलाकार उसका पारा बहुत ही चढ़ा हुआ था, जिससे, रसोईघर में जो भी चीज उसके पाँव के सामने आती वह उससे फुटबॉल खेल रही थी।

ठीक इसी समय गेट पर किसी ने पुकारा...

"मैया, भूख लगी है, मुट्ठी भर खाना खिला दो, मैया!"

आवाज सुनते ही वरालम्मा नागिन-सी फुफकारती हुई गेट की ओर दौड़ पड़ी।

"क्यों री! तेरी भूख का कोई समय नहीं होता है क्या?" चीखती हुई-सी आवाज

## के.के. मीनन

श्री मीनन जी कालेटी तातय्या तथा वेंकम्मा का जन्म 23 मार्च, 1938 ई. को पूर्वी गोदावरी जिले में हुआ। आपका असली नाम कालेटी चिनकृष्णमूर्ति है। अर्थशास्त्र में नागपुर से एम.ए. करने के बाद हैदराबाद के ए.जी. ऑफिस में एक क्लर्क के रूप में नियुक्त होकर 33 वर्ष के सेवाकाल में सुपरिंटेंडेंट की पदोन्नति प्राप्त कर सेवानिवृत्त हुए।

प्रकाशित पुस्तकें— रागतरंगालु, बाकी बतुकुलु, प्रतिध्वनि व क्रतुवु (उपन्यास) तथा लगभग 180 कहानियाँ। इदि स्ट्रीकिंग कासदु, पुलिकुडु, आदि।

## जी. परमेश्वर

प्रख्यात अनुवादक हैं। वे 20 से अधिक पुस्तकों का तेलुगु से हिंदी में अनुवाद कर चुके हैं।

हिंदी अध्यापक के पद से सेवानिवृत्ति के पश्चात् लेखन व अनुवाद कार्य।

संपर्क :

9440454326

में वरालम्मा ने कहा और फिर बात को आगे बढ़ाया– "भैंस की तरह बदन बढ़ा लिया है। कोई काम-वाम क्यों नहीं कर लेती हो?"

भीख माँगना ही जिसका पेशा है, उस लड़की के लिए ऐसी डाँट-फटकार-दुत्कार आदि तो साधारण-सी बात थी। इसलिए उसने बड़े आराम से जवाब दिया–

"मैया! भूख के लिए भी कोई समय होता है क्या? हमें समय से भोजन ही कहाँ मिलता है जो समय से भूख लगे।"

"कुत्ते के सामने भौं...कहो तो बदले में वह भौं-भौं... ही कहेगा। बातें तो बड़ी-बड़ी करती हो। कुछ काम करके अपना पेट क्यों नहीं भरती?"

ऐसी बातें सुनकर ही भिखारियों को गुस्सा आ जाता है। लेकिन क्या करे? वह जानती है गरीब का गुस्सा...स्वयं का नुकसान। इसलिए उसने धीरे से कहा–

"काम देने वाला कोई दाता मिल जाए तो यह नीच काम क्यों करेंगे मैया...?"

"तू काम करना चाहे तो तुझे काम नहीं मिलेगा क्या?"

"न मैया....सचमुच...कोई काम ही नहीं देता। जाने दो! आप ही कोई काम देकर खाना दे दीजिए न!" भिखारिन ने कहा।

भिखारिन ने उस गृहिणी की क्रोधाग्नि से बचने के लिए जो बातें कहीं, वही वरालम्मा के लिए वरदान साबित हुईं। उसके मन में लोभ जाग उठा। दस दिन से नौकरानी नदारद थी। आती भी है तो हफ्ते में दो बार अदृश्य हो जाती है। तिस पर दो महीने का एडवांस पहले ही ले गई है। यह लड़की अगर काम करने को राजी हो जाए तो सारी समस्याएँ हल हो जाएँगी। भरपेट खाना दे दिया तो पालतू कुत्ते की तरह पड़ी रहेगी घर के सामने।

"सचमुच काम करेगी तू?"

"हाँ, सचमुच करूँगी मैया!"

"तुझे यहीं, हमारे घर में ही रहना होगा, कहीं और नहीं जा सकती।"

"मैं कहाँ जाऊँगी मैया? न घर...न बाऽऽऽर!"

"तू जितना खा सकती है, खा ले, लेकिन वेतन में एक पैसा नहीं दूँगी, समझी न!"

"ठीक है मैया! भरपेट खाना मिल जाए तो पैसों की जरूरत ही क्यों होगी? तन ढकने के लिए कोई पुराना कपड़ा दे दीजिए ...बस।"

वरालम्मा ने आगे कुछ नहीं सोचा, बस इतना ही सोचा कि अच्छा सौदा हाथ लगा है। सत्कार्य में देर करना अच्छी बात नहीं होती है। वह भिखारिन को झटपट भीतर ले गई। रात का बचा-खुचा खाना उसे भरपेट खिला दिया। मँजे हुए, अनमँजे, माँजे जाने वाले बर्तनों के साथ-साथ ऐसी-ऐसी वस्तुएँ भी उस लड़की से धुलवा डालीं जिन्हें न तो माँजने की जरूरत थी, न धुलवाने की ही।

"सामने का स्टोर रूम साफ कर ले। रात को वहीं सो जाना। अरे! मैं भी कैसी भुलक्कड़ हूँ? तेरा तो नाम ही नहीं पूछा। तेरा नाम क्या है री....?" वरालम्मा ने पूछा।

'पापम्मा कहते हैं जी।"

पापिन का नाम भी बड़ा अच्छा है! मन में सोचते हुए "ठीक है...ठीक है... पहले अपना काम देख।" वरालम्मा ने आदेश दिया।

पापम्मा वहाँ से स्टोर रूम की ओर जाती हुई सोचने लगी, जो कुछ हो रहा है, वह सच है कि सपना! उसका भीख माँगने के लिए आना, गृहिणी द्वारा गालियाँ खाना... काम की याचना करना और तुरंत उसको काम पर रख लेना....कितनी आश्चर्य की बात है!

तन के लिए काम ज्यादा होने पर भी मन को बड़ा सुख मिल रहा था, पापम्मा को। दर-दर भटकते हुए दाँत दिखाना नहीं पड़ेगा, पेट भरने के लिए। भरपेट मिले न मिले पर इतना तो मिल जाएगा कि भूख की पीड़ा नहीं होगी। सिर छिपाने को जगह मिलने के साथ-साथ पुराने ही सही, तन ढकने के लिए अच्छे कपड़े भी मिल गए थे। इससे बढ़कर और क्या चाहिए था उस अभागिन को?

पापम्मा का रंग गोरा था। गठीले बदन, सुडौल शरीर वाली सुंदर लड़की थी। नित्य स्नान के अभाव से, मैले-कुचैले कपड़ों के कारण वह बादलों की ओट में चाँद-सी थी। यहाँ आकर स्नान कर लिया और ढंग से कपड़े भी पहन लिए तो उसकी सुंदरता निखर आई थी। वह कोई अप्सरा तो नहीं लग रही

थी पर आकर्षण में कोई कमी नहीं थी। वरालम्मा ने जहाँ पापम्मा में सभी सद्‌गुण देखे, वहाँ उसमें यह सुंदरता...और आकर्षण का अवगुण भी देखा। उसे काफी चिंता हुई। नौकरानी से प्राप्त सुख-दुःख से अपने लिए होने वाले लाभ-हानि की तुलना की। हानि की तुलना में लाभ ही अधिक दिखाई दे रहे थे। अंत में उसने अपने मन को मना ही लिया।

बेचारी वरालम्मा की आवश्यकता ही ऐसी थी। शाम को जब उनके पति घर लौटे तो पत्नी को देखकर वे आश्चर्यचकित रह गए। पत्नी के चेहरे पर न कहीं थकावट नजर आ रही थी, न ही चिड़चिड़ाहट। उन्हें बड़ा संदेह हुआ और पत्नी से उत्सुकतावश पूछ ही लिया– ''क्या बात है, खिलती कली की तरह खुश नजर आ रही हो? नौकरानी आ गई क्या?''

वरालम्मा फूली नहीं समा रही थी। पति की प्रशंसा के कारण नहीं। सवेरे उनका पारा जो चढ़ गया था, वह अब पूरी तरह से उतरा हुआ था।

उसने पति से उल्टा प्रश्न किया, ''अब तो समझ में आया न! दिन भर लट्टू की तरह घूमते हुए काम करने पर शाम तक आदमी की क्या हालत होती है? और दिन भर आराम से बैठे रहने पर चेहरा कैसे खिल जाता है?''

''मैंने कब, नहीं कहा। असली बात क्या है?''

''नई नौकरानी रख ली है मैंने।'' अपनी प्रसन्नता को प्रकट करते हुए वरालम्मा ने कहा।

उन्होंने सोचा, नई नौकरानी है तो काम करके चली जाएगी। लेकिन जब उन्हें पता चला कि नौकरानी सुंदर भी है, आकर्षक भी है और घर में ही रहेगी तो उनके मन में लड्डू फूटने लगे।

उठते ही दफ्तर की ओर दौड़ लगाने वाले पति को उस दिन घर में ही आराम से इधर-उधर घूमते हुए देखा तो वरालम्मा ने पूछा, ''क्या है जी...आज दफ्तर नहीं जाना है क्या? घर में आराम से बैठे हो?''

''क्या करें? तेरे चेहरे से नजर नहीं हटती... ।'' पति ने परिहास किया।

''शरम करो...घर में शादी के लायक बेटा है। बड़े रसीले बन रहे हो।''

''हाँ, बेटा है...? न काम का...न काज का, दुश्मन अनाज का।''

''जब देखो उसके पीछे पड़े रहते हो। उम्र ही क्या है उसकी? कर लेगा नौकरी।''

''हाँ-हाँ!! दो साल और ऐसे ही प्रतीक्षा करो। सरकारी नौकरी पाने की उम्र भी निकल जाएगी। तब पता चलेगा कि उसकी उम्र क्या है?''

इतने में पापम्मा ने वहाँ आकर कहा, ''मैया....काम खत्म हो गया है।'' वरालम्मा ने देखा कि उनके पतिदेव की ललचाई आँखें लड़की पर से हट ही नहीं रही हैं। पति के इस व्यवहार से उसके मन को धक्का-सा लगा।

''यह लड़की कौन है?'' अनजान बनते हुए पति ने वरालम्मा से पूछा।

''यही है अपनी नई नौकरानी।'' वरालम्मा ने कहा।

''अच्छा...अच्छा....! कितने दिनों के बाद ऐसा सद्‌विचार तेरे दिमाग में आया!'' पति ने कहा।

''क्या मतलब?'' वरालम्मा की आवाज में संदेह की भावना स्पष्ट प्रतिध्वनित हुई।

''नहीं-नहीं, कुछ नहीं!! कुछ नाश्ता-वाश्ता करा दो। दफ्तर के लिए देर हो रही है।''

पापम्मा अभी तक वहीं खड़ी थी।

''क्यों री...अभी तक यहीं खड़ी है। चल...मैं आ रही हूँ।'' कहते हुए वरालम्मा पति को नाश्ता परोसने में लग गई। नाश्ता तो वह परोस रही थी, लेकिन उसके मन में सैकड़ों संदेहात्मक विचार उभर रहे थे...।

पिता के दफ्तर के लिए निकलते ही पुत्र ने कमरे में प्रवेश किया।

उसने माँ से पूछा....''अपने घर के पिछवाड़े में यह नई लड़की कौन है माँ?''

माँ ने बेटे को सारी कहानी कह सुनाई।

''तभी तो....स्टोर रूम इतना साफ-सुथरा दिखाई दे रहा है।'' कहते हुए वह वहाँ से चला गया।

इसी प्रकार दो दिन और बीत गए। घर के कामों से वरालम्मा को मुक्ति मिल गई थी। पर पापम्मा पिता-पुत्र की हरकतों से परेशान थी।

वरालम्मा ने रात बड़ी मुश्किल से बिताई। उसे पहले से ही बी.पी. का रोग था। इस कारण नींद की गोलियाँ खाए बिना वह सो नहीं सकती थी। आज रात उसे सोने के लिए एक गोली ज्यादा खानी पड़ी। वरना उसे रात भर जागरण करना पड़ता। सवेरे वह देर से जगी। कारण था नींद की अतिरिक्त गोली का असर और नौकरानी के होने की निश्चिंतता। लेकिन उठकर देखा तो घर की सारी चीजें जहाँ की तहाँ पड़ी हैं। अगले ही पल अशोक वाटिका की सीता के रूप में पापम्मा उसके सम्मुख उपस्थित हुई।

''क्यों री, क्या बात है? सारे काम जहाँ के तहाँ पड़े हैं?''

''मैं अब एक पल भी यहाँ नहीं रह सकती।''

''क्यों...क्या हुआ?''

''यह गृहस्थी का घर है या वेश्या का कोठा?''

''क्या हुआ री...जो मन में आया बके जा रही है?''

''और नहीं तो क्या?....इतने सालों से गली-सड़क पर रहती हूँ। किसी मर्द ने मुझ पर हाथ नहीं डाला। दो रातें यहाँ, इस घर में क्या ठहरी कि बाप-बेटे दोनों ने ही नरक दिखा दिया।...''

इसके आगे वरालम्मा को कुछ भी सुनाई नहीं दिया। उसने चीखते हुए कहा– ''जा...निकल जा...तुरंत निकल जा मेरे घर से!!!''

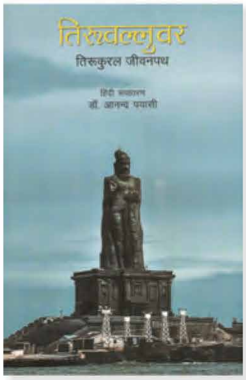


**तिरुकुरल जीवनपथ; तिरुवल्लुवर**
हिंदी रूपांतरण : **डॉ. आनंद पयासी**
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
नई दिल्ली 110070.
पृ. 404; रु. 335.00

## मानव जाति को शाश्वत संदेश देता प्राचीन ग्रंथ

तमिल भाषा के महान कवि तिरुवल्लुवर के बारे में अनुमान है कि वे ईसापूर्व 30 से 200 वर्ष के बीच हुए। यहाँ संयोग की बात है कि वाल्मीकि की तरह इनका जन्म भी एक दलित परिवार में ही हुआ था। मान्यता है कि वे चेन्नई के मयिलापुर से थे परंतु उनका अधिकांश जीवन मदुरै में बीता क्योंकि वहाँ पांड्य राजाओं के द्वारा तमिल साहित्य को पोषित किया जाता रहा है और उनके दरबार में सभी जाने-माने विद्वानों को प्रश्रय दिया जाता था। वहीं के दरबार में 'तिरुकुरल' को एक महान ग्रंथ के रूप में मान्यता मिली।

शैव, वैष्णव, बौद्ध तथा जैन सभी तिरुवल्लुवर को अपना मतावलंबी मानते हैं, जबकि उनकी रचनाओं से ऐसा कोई आभास नहीं मिलता। यह अवश्य है कि वे उस परम पिता में विश्वास रखते थे। उनका विचार था कि मनुष्य गृहस्थ रहते हुए भी परमेश्वर में आस्था के साथ एक पवित्र जीवन व्यतीत कर सकता है। संन्यास उन्हें निरर्थक लगा था। उनकी रचना 'तिरुकुरल' एक ऐसा ग्रंथ है जो नैतिकता का पाठ पढ़ाता है। 'गीता' के बाद विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में सबसे अधिक अनूदित यह ग्रंथ तीन खंडों में बँटा है—'अरम' (आचरण और सदाचार), 'परुल' (सांसारिकता और संवृद्धि) तथा 'इन्बम' (प्रेम और आनंद)। इसके कुल 133 अध्याय हैं और हर अध्याय में 10 दोहे। प्रत्येक खंड में क्रमशः 38, 70 और 25 अध्याय हैं। हर एक अध्याय में 10 'कुरल' के हिसाब से समूचे ग्रंथ में 1330 'कुरल' हैं।

वैसे तो इस ग्रंथ के कई-कई अनुवाद सदियों से होते रहे हैं, लेकिन राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा प्रकाशित यह पुस्तक कई तरीके से अनूठी है। इसमें प्रत्येक कुरल को पहले तमिल में प्रस्तुत किया गया है, फिर उसका तमिल उच्चारण किया गया है। इसके बाद कुरल का सरल हिंदी भावानुवाद और उसके बाद मूल तमिल तिरुकुरल के मुक्तक काव्य को हिंदी में कविता के रूप में ही अनूदित किया गया है। इस कार्य में अनुवादक ने लगभग छह साल लगाए।

रूपांतरकार डॉ. आनंद पयासी (मई, 1951—जून, 2016) हिंदी व अर्थशास्त्र में एम.ए. और दोनों विषयों में पी.एचडी. तथा एल.एल.बी थे। वे सन् 2011 में मध्य प्रदेश विधानसभा के प्रमुख सचिव के पद से सेवानिवृत्त हुए। डॉ. पयासी विभिन्न राज्यों में विधानसभा की कार्यवाही, प्रक्रिया आदि से संबंधित प्रशिक्षणों व गोष्ठियों में बतौर विशेषज्ञ शामिल होते रहे हैं, साथ ही विश्व के कई देशों में संसदीय अनुशासन व कार्यवाही के विशेषज्ञ के तौर पर आमंत्रित किए जाते रहे हैं। उनकी कबीर, नानक, शेख फरीद, रविदास आदि पर कई पुस्तकें प्रकाशित हैं।

## लागत करेजवा में चोट

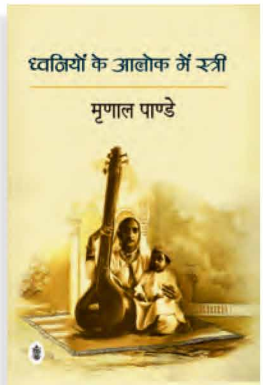


समीक्षक : **दिव्या राय**
**ध्वनियों के आलोक में स्त्री**
**मृणाल पांडे**
राधाकृष्ण प्रकाशन
नयी दिल्ली
मूल्य : रु. 150.00

संस्कृति की चर्चा करते समय अक्सर एक गर्व का भाव व्यक्त होता है, क्योंकि इससे अपने देश-समाज की चिरकालिक विरासत का बोध होता है। लेकिन इस क्रम में हम उस सच्चाई से प्रायः अनजान बने रहते हैं, जो सदियों के अंतराल में जन्मी-बढ़ी-विकसित हुई, उस विरासत की सृजन-प्रक्रिया का यथार्थ किंतु अवांछित पक्ष है। बेशक विरासत के रूप में किसी चीज को अपनाने के क्रम में समाज अगर उसके अवांछित और अप्रासंगिक पक्षों को अलग नहीं करता—सार-सार को गहि रहे, थोथा देय उड़ाय—तो फिर वह विरासत नहीं बल्कि अतीत का निरर्थक बोझ बनकर ही रह जाएगा। लेकिन हमें विरासत की निर्माण-प्रक्रिया के उन पक्षों से अनजान नहीं रहना चाहिए, जिनकी अग्नि-परीक्षा से उन तमाम लोगों को गुजरना पड़ा, जो विरासत को सिरजने में लगे थे। वस्तुतः इतिहास से यदि कोई सीख ली जा सकती है तो वह यही हो सकती है कि हम अपनी प्रगति के अवरोधों को पहचानें, भेदभाव को अस्वीकार करें और उन लोगों को पहचानें जो अब तक 'अपात्र' बतलाए जाते रहे हैं, लेकिन जो हमारी संस्कृति और विरासत के वास्तविक निर्माता हैं।

यह काम विरासत-निर्माण की जटिल प्रक्रिया को झुठलाकर कोई सीधा-सरल फार्मूला गढ़ने से नहीं हो सकता। इसके लिए गहन विश्लेषण करना पड़ेगा। समाज की सत्ता-संरचना और वर्चस्व का गणित समझे बगैर हम अपनी संस्कृति और विरासत के सही सूत्रधारों को पहचान नहीं सकते।

प्रख्यात लेखिका मृणाल पांडे ने भारतीय संगीत के हवाले से हमारी संस्कृति और विरासत के गलियारों की खोज-खबर ली है और बतलाया है कि जिन अनेक संगीत-सरस्वतियों का गायन-वादन सुनकर हम 'वाह-वाह' करते नहीं अघाते, उन्हें अपनी संगीत-साधना के सिलसिले में कितनी उपेक्षा, अपमान और भेदभाव झेलना पड़ा है। राज-समाज की वर्चस्वशाली शक्तियों ने अपनी पुरुष प्रधान सत्ता को बनाए रखने के लिए स्त्री को निरंतर अपात्र और अयोग्य घोषित किए रखा। गौहर जान हों या बेगम अख्तर, मोघूबाई हों या गंगूबाई हंगल, सभी को राज-समाज के इस दोहरेपन की आग के बीच से होकर निकलना पड़ा। ऐसा नहीं कि इन कलाकारों को जीते-जी दौलत और शोहरत नहीं मिली—वह तो मिली, पर नहीं मिला तो वह सम्मान, वह प्रतिष्ठा, जिसकी वे स्वाभाविक अधिकारिणी थीं। फिर उनका यह दुःख यहीं तक सीमित नहीं था। पुरुष तो पुरुष, खुद उनकी समवयस्का महिलाएँ भी उन्हें हिकारत की नजर से देखती थीं। मृणाल जी ने लिखा है किसी भी स्त्री (बहुत मेधावी और रचनात्मक तौर से हमउम्र पुरुषों जैसी या उनसे भी अधिक क्षमतावान होने के बावजूद) के लिए सिर्फ और सिर्फ अपने लिए स्थायी शांति और एकांत जुटाकर कला की सतत साधना राज और समाज की सतत आलोचना और कोप का अनिवार्य निशाना बन जाना है। उन्होंने बतलाया है कि इन संगीत साधिकाओं को एक ओर संगीत-गायन का अभ्यास और साधना करने की स्वार्जित जिम्मेदारी थी तो दूसरी ओर दुनियावी पारिवारिक जिम्मेदारी, जिसके तहत उनसे एक आदर्श पत्नी, आदर्श माँ और आदर्श बहू बनने की अपेक्षा की जाती थी। इस आदर्श का निहितार्थ प्रायः संगीत से छुट्टी कर लेने का ही होता था। यही वजह है कि वे सबकी निगाहों में संदिग्ध बनी रहती थीं। खुद अपनी निगाहों में भी।

यहाँ यह बात याद की जा सकती है कि हमारी अनेक स्वनामधन्य संगीतज्ञ गायिकाएँ उन जगहों से आती थीं, जिन्हें 'कोठा' कहा जाता था। इन कोठों के बिना हमारे कुलीन रईसों की जिंदगी पूरी नहीं होती थी, लेकिन इन कोठों पर रहने वाली 'तवायफों' का जिक्र शायद ही कभी सम्मान के साथ किया जाता हो। मृणाल जी के अनुसार, भारतीय संगीत जगत की यह एक केंद्रीय विडंबना रही है कि ज्ञान की ऐसी अनिर्बाध साधना हमारे यहाँ प्रायः पेशेवर गायिकाओं के लिए ही सुलभ हो पाई है, जो गायिकाओं के मातृसत्तात्मक परिवारों से जुड़ी हैं और जिनके लिए सामान्य अर्थों में घर-परिवार और समाज का अर्थ भिन्न रहा आया। इन नृत्य-संगीतजीवी परिवारों में डेरेदार तवायफें पहले पायदान पर थीं। उनका रोब-दाब काफी था, मगर वह भी खुद अपनी जमात को आम नाचने-गाने वालियों से काफी ऊपर मानती थीं। वह अंतर केसरबाई और अख्तरबाई जैसी डेरेदार गायिकाओं और रसूलनबाई और गंगूबाई हंगल जैसी जाति से अवर्ण गायिकाओं के जीवन से जाना जा सकता है।

मृणाल अनौपचारिक तरीके से और किस्सागोई के-से अंदाज में संगीत जगत के ऐसे अनेक प्रसंगों का जिक्र करती हैं, जिनसे पूर्व वर्णित दोहरेपन का पता चलता है। जिस समाज में (पुराने समय में) संगीत को ही घरेलू परिवेश को दूषित करने वाला माना जाता था, उसी समाज में यदि हम इतनी बड़ी संगीत-विरासत को आज उपस्थित पाते हैं तो हमें इसके साधकों-सर्जकों की हिम्मत की कल्पना करनी चाहिए। इसमें भी हमें उन स्त्री संगीत-साधिकाओं, गायिकाओं के बारे में सोचना चाहिए, जो आम समाज के साथ-साथ खुद अपने संगीत जगत के पुरुष सहधर्मियों-उस्तादों से भी तिरस्कार झेलना पड़ता था। 'ध्वनियों के आलोक में स्त्री' इस प्रसंग को सामने लाकर हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक इतिहास के एक जरूरी अध्याय से परिचित कराता है।

---

## भोग संस्कृति के विकास से संकट में है धरती

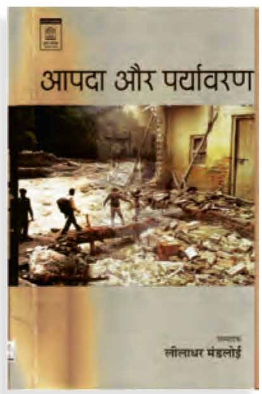


**आपदा और पर्यावरण**
संपा. : **लीलाधर मंडलोई**
भारतीय ज्ञानपीठ
नयी दिल्ली
पृ. 92; रु. 120.00

भारतीय ज्ञानपीठ की पहचान प्रायः स्तरीय कथा साहित्य प्रकाशित करने वाली संस्था के तौर पर होती है, लेकिन हाल ही में उन्होंने प्रकृति पर मँडरा रहे अस्तित्व के संकट की ओर आम लोगों का ध्यान आकृष्ट करवाने के उद्देश्य से 'ज्ञान गरिमा' पुस्तकमाला के अंतर्गत पर्यावरण से जुड़े कुछ आलेखों का संकलन प्रकाशित किया है। पुस्तक चेतावनी देती है कि अपने साथ मनमाना व्यवहार करने से कुपित प्रकृति किसी भी दिन दबे पाँव आकर, धरती को बुरी तरह कँपाकर तबाही मचा सकती है। जैसे नेपाल के भूकंप और उत्तरांचल में जल प्लावन ने हजारों लोगों को असामयिक मौत के घाट उतार दिया था। पुस्तक के आलेख भूकंप की विभीषिका, तालाबों के संरक्षण, धरती के बढ़ते तापमान आदि की चर्चा करते हैं और बताते

हैं कि हम भले ही प्राकृतिक आपदाओं के लिए किसी अदृश्य शक्ति को दोष दें, लेकिन वास्तव में यह इंसान की ही गलतियों का परिणाम है। संकलन में अनुपम मिश्र, देवेन्द्र मेवाड़ी, गोपाल कृष्ण गाँधी, उमेश चौहान, संतोष चौबे, पंकज चतुर्वेदी, विष्णु नागर और आलोक प्रभाकर के कुल 11 आलेख हैं। संकलन के संपादक लीलाधर मंडलोई की भूमिका अपने आप में पर्यावरण पर केंद्रित तथ्यों का खजाना है। अंत में परिसंवाद खंड में कई ख्यातिलब्ध लेखकों-विचारकों की टिप्पणियाँ भी हैं। अनुमान है कि धरती पर हर साल औसतन पाँच लाख भूकंप आते हैं। विज्ञान अभी तक कोई ऐसा उपकरण नहीं बना पाया है जो भूकंप की अग्रिम चेतावनी दे सके। इंसान असहाय-सा अपनी दुनिया लुटते-बिखरते देखता रह जाता है। ऐसे में कोई भी शहर या कस्बा चाहकर भी ऐसी आपदा से निबटने की तैयारी कर नहीं सकता। अलनीनो, हुदहुद या सुनामी तबाही के कुछ ऐसे नए नाम हैं जो मानवता के लिए खतरा बने हैं। संकलन में भूकंप पर चार आलेख हैं जो कि बताते हैं कि भूकंप के खतरे नई बस रही बस्तियों पर क्योंकर ज्यादा मँडरा रहे हैं। हमने छेड़खानी कर-करके प्रकृति की आत्मा को छलनी कर दिया है। भूकंप उसकी वजह से आते हों या न आते हों, हमने इस वजह से धरती के विनाश के असंख्य रास्ते खोल दिए हैं।

बदलता मौसम, धरती का बढ़ता तापमान किस तरह से धरती पर इंसान के अस्तित्व के लिए खतरा है और यह हालत निर्मित करने में इंसान की विकास-गाथा कहाँ तक जिम्मेदार है, इसका खुलासा करते हैं तीन आलेख जो कि देवेन्द्र मेवाड़ी व संतोष चौबे ने लिखे हैं। अनुपम मिश्र का लेख 'अकेले नहीं आते बाढ़ और अकाल' में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के आत्मजीवन चरित के उस हिस्से का उल्लेख है जहाँ समाज ने अपने बलबूते पर बाढ़ की विभीषिका को नियंत्रित किया।

असल में, जल संकट, जंगल कम होने या फिर भूकंप, सुनामी और विभिन्न प्रकार की आपदाओं के सामने खुद को असहाय बताने से अपनी जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ना होगा। आपदाओं के अनेक कारक हमारी जीवन-शैली से सीधे जुड़े हैं, जिसके कारण प्रकृति का संतुलन गड़बड़ा रहा है। इंसान ने विज्ञान के जरिये प्रकृति पर नियंत्रण करने का सपना पाला और उसी का दुष्परिणाम है कि नदियों, झीलों, समंदरों समेत तमाम जल स्रोत गंदगी से पटे पड़े हैं, वायु में जहरीला धुआँ भरा है, धरती रासायनिक खादों और कीटनाशकों से जहरीली हो गई है, जंगल पशुओं और पेड़-पौधों से खाली हो रहे हैं, जीव-जंतुओं और पक्षियों की कुछ दुर्लभ प्रजातियाँ नष्ट होने की कगार पर हैं। जड़ी-बूटियों की अनगिनत प्रजातियाँ विलुप्त हो गई हैं। पंकज चतुर्वेदी के दो आलेख तालाब संरक्षण और जैवविविधता पर मँडरा रहे खतरे पर केंद्रित हैं। यह पुस्तक संदेश देती है कि आज धरती की चिंता में सहविचारक होने का समय आ गया है। जरूरत इस बात की है कि पृथ्वी पर किए जा रहे प्रत्येक कार्य को विकास और अर्थव्यवस्था के उत्थान के लिए जरूरी घटक के तौर पर न देखा जाए। यह भी सोचें कि इससे हो रहे प्रकृति के नुकसान की भरपाई क्या किसी तरह से हो पाएगी?

---

## सिंहस्थ की सनातन परंपरा और अमृत की एक बूँद-सी —'सिंहस्थ'

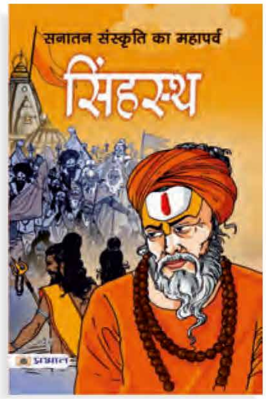


समीक्षक : डॉ. विकास दवे

**सनातन संस्कृति का महापर्व —'सिंहस्थ'**

संपा. : **सिद्धार्थ शंकर गौतम**

प्रभात पेपर बैक्स; 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली 110002; संस्करण : प्रथम 2016; पृ. 160 रु. 125

सिद्धार्थ शंकर गौतम की पुस्तक 'सिंहस्थ' हाथों में है। 'प्रभात प्रकाशन' की अपनी गौरवशाली परंपरा का निर्वाह करती-सी यह पुस्तक भी एक ही दृष्टि में अपने भौतिक कलेवर से मन मोह लेती है। आकर्षक आवरण सर्वप्रथम आकर्षित करता है। तत्पश्चात् हमारे समक्ष परत दर परत खुलने लगती है विश्व के सबसे बड़े स्वस्फूर्त महापर्व की एक-एक जानकारी। लाखों वर्ष का हमारा गौरवशाली अतीत अपनी गरिमामय स्मृतियों के साथ चलचित्र-सा आँखों के आगे से गुजरने लगता है।

कुंभ के आध्यात्मिक पक्ष के साथ जुड़े पौराणिक आख्यानों को पाठक पढ़ते-पढ़ते ही एक अलग दुनिया में प्रवेश करने लगता है। गरुड़ द्वारा अमृत कुंभ को लाने और चार तीर्थ नगरियों में अमृत का छलकना पाठक के हृदय में आनंद छलकाता चलता है। उसके ज्योतिषीय महत्त्व को रेखांकित करते हुए श्री सिद्धार्थ जी हमें वर्ष 2016 में आयोजित उज्जैन के सबसे यशस्वी कुंभ तक ले आते हैं।

सच कहें तो यह पुस्तक डॉ. सोमदत्त गौतम के मंगलाचरण से ही किसी सधे हुए गाइड की तरह पाठक को अंगुली थामे सिंहस्थ दर्शन कराने लगती है। पुस्तक को दो खंडों में बाँटने का प्रयास अवश्य किया गया है पर दोनों ही खंड एक-दूसरे की सीमा में प्रवेश करते-से प्रतीत होते हैं। फिर भी प्रथम खंड में उज्जयिनी के आत्मकथात्मक संवाद आकर्षक हैं। लगता है स्वयं तीर्थनगरी हमें माँ की तरह अपने अंक में समेटे थपकी दे रही है। इस तीर्थ की पौराणिक

एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, पवित्र क्षिप्रा के क्षिप्र प्रवाह के आसपास के देव सदन, यहाँ घटे ऐतिहासिक घटनाक्रम, कुंभ पर्व की पूर्व पीठिका, उसके अनेक अनछुए घटनाक्रम, पुराणों में आए इसके संदर्भ देते हुए लेखक हमें इसके विकृत और दुःखद पक्षों से भी रूबरू कराते चलते हैं। इसके बाद पुस्तक के अंश हमें वह ज्ञान उपलब्ध कराते हैं, जो पाठक के लिए सर्वाधिक जिज्ञासा का कारण बनते हैं। आद्य शंकराचार्य द्वारा प्रणीत अखाड़ा परंपरा को एक विस्तृत फलक उपलब्ध कराती है यह पुस्तक। सामान्य व्यक्ति के आध्यात्मिक ज्ञान को केवल अपडेट करने का उपक्रम न बनाकर सिद्धार्थ शंकर गौतम ने इसे श्रद्धा को बढ़ाने का उपक्रम बनाया है। यही इस पुस्तक की सार्थकता भी है। हाँ, अखाड़ों की अद्यतन जानकारी देने के साथ वैष्णव संप्रदाय की अनदेखी-सी जरूर हुई है। रामानंद और वल्लभ संप्रदाय को थोड़ा स्थान अपेक्षित था। पर मैं इसे मात्र ऐसा मानता हूँ जैसे पूरा सिंहस्थ घूमने का संकल्प लिए व्यक्ति का मंगलनाथ क्षेत्र छूट गया। नागा परंपरा हो या सिंहस्थ की शासकीय व्यवस्थाएँ, कुंभ पर्व की ऐतिहासिक-पौराणिक पृष्ठभूमि हो या कुंभ का वर्तमान पीढ़ी को दाय, इस पुस्तक में अनेक लेखों की कलम से निःसृत आलेखों ने समग्र रूप से इसे संग्रहणीय बना दिया है। संत शक्ति के आशीष समाज के लिए प्रेरक व दिशादर्शक होते हैं।

दूसरे खंड में पूज्य शंकराचार्य जी स्वामी स्वरूपानंद सरस्वती, श्री श्री रविशंकर जी, श्रीयुत देवप्रभाकर शास्त्री 'दद्दाजी', पू. उत्तम स्वामी जी, पू. भय्यू जी महाराज, पू. लाहिड़ी गुरुजी, पं. विजयशंकर जी मेहता, पं. आनंद शंकर जी व्यास एवं प्रभात कुमार सोनी 'गुरुजी' के शुभकामना संदेश और आशीर्वचन आलेख के रूप में लिए गए हैं। इस प्रकार यह ग्रंथ एक ही विषय का श्रेष्ठ संपादित ग्रंथ बनकर उभरा है।

श्री सिद्धार्थ शंकर गौतम की यह तृतीय कृति पाठकों के लिए सिंहस्थ 2016 की तरह सदैव अविस्मरणीय बनी रहेगी।

इस अच्छी कृति के लिए ऊपरोल्लेखित संतों-मनीषियों के अतिरिक्त लेखकद्वय डॉ. मोहन जी यादव एवं श्री सुशील जी शर्मा को भी साधुवाद और संपादक श्री सिद्धार्थ जी एवं प्रभात प्रकाशन के श्री प्रभात जी को अनेकशः शुभकामनाएँ।

---

## सूरीनाम की गहरी पड़ताल करता 'छिन्नमूल'

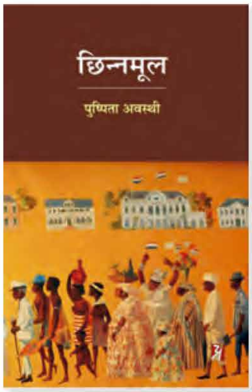


समीक्षक : **प्रेमा नेगी**

**छिन्नमूल**

लेखिका : **पुष्पिता अवस्थी**
अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ-4, शालीमार गार्डन एक्सटेंशन, गाजियाबाद-201005 (उ.प्र.)
पृ. 256; रु. 595;
ISBN : 978.93.85013.17.1

छिन्नमूल का मतलब जो जड़ से उखाड़ या काट दिया गया हो। इसी उखाड़े जाने की पीड़ा को अपनी कलम से शब्द दिए हैं चर्चित साहित्यकार पुष्पिता अवस्थी ने। अपने उपन्यास 'छिन्नमूल' में उन्होंने सूरीनाम और नीदरलैंड के अपनी संस्कृति से उच्छिन्न होने की पीड़ा को बखूबी उकेरा है नायिका ललिता जो पेशे से पत्रकार है और रोहित के माध्यम से। औपनिवेशिक दौर में गुलाम के बतौर सूरीनाम ले जाए गए भारतवंशियों को लेखिका ने 'छिन्नमूल' उपन्यास में अपने लेखन का केंद्रबिंदु बनाया है। इसमें भारतवंशी मजदूर तबके और किसानों के संघर्षपूर्ण जीवन को तो दर्शाया ही गया है, साथ ही वहाँ के वर्तमान हालातों, दशा-दिशा, रहने के तौर-तरीकों, समाज के साथ-साथ राजनीतिक हालातों को भी उद्घाटित किया गया है। उपन्यास के बहाने पुष्पिता ने सूरीनाम की पूरी पड़ताल, इसे रिसर्च कहना ज्यादा मुनासिब होगा, की है।

हालाँकि एक उपन्यास में बहुत सारे विषयों को समेटने की कोशिश में कहीं-कहीं विषय भटकाव की तरफ जाता है, लेकिन फिर से मूल प्रश्न पर आकर लेखिका इससे बाहर निकलने में कामयाब हो जाती हैं। इस सबके बावजूद पुष्पिता अवस्थी ने सूरीनाम की वर्तमान परिस्थितियों के साथ इतिहास का हवाला देते हुए एक पठनीय उपन्यास रचा है। सूरीनाम में, खासकर भारतवंशियों को केंद्रबिंदु बनाकर वहाँ की राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक और धार्मिक परिस्थितियों को उपन्यास में कुछ इस तरह गूँथा गया है कि वह कहीं से ऊब पैदा नहीं करता, बल्कि पाठक की सूरीनाम के प्रति जिज्ञासाएँ ही शांत होती हैं।

'छिन्नमूल' का नायक रोहित पूरे सूरीनाम देश का प्रतिनिधित्व करता प्रतीत होता है। उपन्यास में रोहित और ललिता के अलावा रोहित की बहन गंगा, उसकी माँ, रिचर्ड, सुष्मिता, नीग्रो नर्स पीनास के अलावा और भी कई ऐसे चरित्र हैं जो अपनी गहरी छाप छोड़ते हैं। इतिहास से लेकर वर्तमान तक के सूरीनाम की बदलती राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों की इसमें गहरी पड़ताल की गई है। खासकर जिस तरह भारत धर्म की दुकान बन चुका है और धार्मिक संस्थाएँ समाज को जिस तरह संचालित करती हैं और उनमें जिस तरह का भ्रष्टाचार व्याप्त है, कुछ वैसी ही स्थितियों से सूरीनाम भी दो-चार हो रहा है। उदारीकरण के तरह-तरह के दुष्परिणाम तो परिलक्षित होते ही हैं, साथ ही भारतवंशियों और वहाँ निवास करने वाले अन्य लोग किस तरह से खुद को अपने मूल से छिन्न-भिन्न कर

लेना चाहते हैं यह भी साफ-साफ दिखता है। इसी का परिणाम है कि वहाँ निवास करने वाले भारतवंशी भारत से आने वाले लोगों के साथ दोहरा व्यवहार करते हैं। सूरीनाम के दिन-प्रतिदिन के कार्यकलापों, लोगों का एक-दूसरे के प्रति व्यवहार, खासकर वहीं रच-बस गए भारतवंशियों का भारत से आने वाले लोगों के प्रति विदेशियों की तरह व्यवहार चौंकाता है।

मानवीय व्यवहार और आपसी संबंधों में रच-बस चुके स्वार्थ की भी गहरी पड़ताल करता है 'छिन्नमूल'। रोहित का निःस्वार्थ रूप से अपनी विधवा बहन गंगा के परिवार की सहायता करने के बदले गंगा और उसके परिवार का सिर्फ पैसे के लिए रोहित का उपयोग करना स्वार्थी 'खूनी' रिश्तों की पोल खोलता है कि कैसे रोहित के परिजन उसका इस्तेमाल करते हैं और वह सब कुछ जानते-समझते हुए भी चुपचाप अपने कर्तव्य का पालन करता है। उपन्यास का नायक रोहित, जिसके पुरखे भारतवंशी हैं, सूरीनाम में रच-बस चुका है। उसकी नायिका यानी ललिता से मुलाकात बिल्कुल फिल्मी अंदाज में होती है। एक प्रेम को हादसे में और दूसरे प्रेम से धोखा खा चुकी ललिता का हालाँकि प्रेम से विश्वास उठ चुका है, मगर रोहित का अपने प्रति निश्छल प्रेम देख वह उससे प्रेम किए बिना नहीं रह पाती। हालाँकि शुरुआत में रोहित जब उससे पूछता है— "आर यू मैरिड, तोहार सादी भइल है?" तो वो कहती है— "यस-यस, हाँ-हाँ, बिल्कुल। मैंने प्रेम भी किया है और विवाह भी।" क्योंकि उसे लगता था कि विदेशों में पुरुष मित्रता और प्रेम के फाँस से खुद को बचाने का यह तरीका सबसे अच्छा है कि खुद को शादीशुदा बता दिया जाए। रोहित की इस मामले में स्वीकारोक्ति एकदम ईमानदार है, जिससे प्रभावित हुए बिना ललिता भी नहीं रह पाती। वह उससे स्पष्ट बता देता है कि उसका विवाह हुआ था, मगर उसकी पत्नी उसे छोड़कर जा चुकी है। लेखिका ने उपन्यास में गाहे-बगाहे भारतीय रीति-रिवाजों, मान्यताओं को वहाँ के परिवेश में बखूबी दर्शाया है। जैसे रोहित-ललिता का विवाह यूरोपीय शैली में होता है, मगर भारतीयता की झलक लिए हुए। रोहित का इस विवाह में ललिता की माँग भरना हिंदू मान्यता का परिचायक है, क्योंकि हिंदू धर्म में सिंदूर सुहाग का प्रतीक है, इसके बिना विवाह और सुहागिन दोनों अधूरे माने जाते हैं।

कहानी को आगे बढ़ाते हुए लेखिका ऐतिहासिक और राजनीतिक संदर्भों का हवाला देना नहीं भूलतीं। यूँ कहें कि वह सूरीनाम के संदर्भ में हर बात की ऐतिहासिक दृष्टि से पड़ताल करती हैं, कहना गलत नहीं होगा। जैसे—"उन पक्षियों के साथ-साथ ललिता को भी यह लगने लगा था कि पाँच नवंबर 1975 को इस देश के लोगों को आजादी तो मिल गई पर गायक पक्षी जैसे अब भी आजादी की प्रतीक्षा में हैं— जिससे मुक्त कंठ से वह भी गा सकें।" एक और उदाहरण से देखें तो— "गयाना का अर्थ पानी भी है। जल तटीय देश होने के कारण 'गयाना' शब्द इनसे जुड़ा हुआ है और जहाँ पर यूरोपीय देशों फ्रेंच, डच और ब्रिटिश देश के कॉलोनाइजर ने एशियाई लोगों से मजदूरी करवाकर बस्ती बसाई थी, इसलिए उन्हीं लोगों के नाम से इस धरती की पहचान बनी और नाम मिला। दास प्रथा के अंतर्गत अफ्रीका से आए हुए नीग्रो यहाँ खेती करते रहे और 1873 की एक जुलाई के बाद से एशिया से लाए गए जापानीज, चायनीज और हिंदुस्तानी मजदूरों के पाँच वर्षों के कॉन्ट्रैक्ट की मजदूरी से यह धरती फली-फूली।"

कुल मिलाकर 'छिन्नमूल' को पढ़कर यह महसूस होता है कि जैसे नायिका ललिता की जगह खुद पुष्पिता खड़ी हैं और यह सब उनका देखा-भोगा सच है। सूरीनाम में भारतवंशियों के जीवन को जानने-समझने की दिशा में इस उपन्यास को एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज कह सकते हैं।

---

## अटल बिहारी वाजपेयी की काव्य-चेतना

### —एक संग्रहणीय पुस्तक

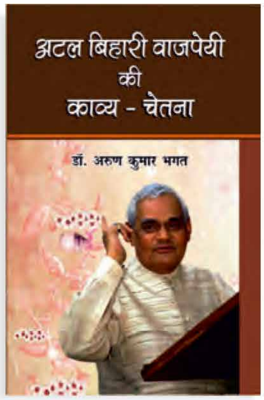


समीक्षक : **डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव**

**'अटल बिहारी वाजपेयी की काव्य-चेतना'**

संपा. : **डॉ. अरुण कुमार भगत**

पुष्पांजलि प्रकाशन, नई दिल्ली

पृ. 208

युवा पत्रकार और चर्चित समालोचक डॉ. अरुण कुमार भगत द्वारा संपादित उल्लेख्य कृति है— 'अटल बिहारी वाजपेयी की काव्य-चेतना'। भारत के पूर्व प्रधानमंत्री एवं सुकवि अटल बिहारी वाजपेयी के कृतित्व पर संभवतः यह अपने तरह की एक विशिष्ट समालोचनात्मक पुस्तक है। इसमें अटल बिहारी वाजपेयी की काव्य-चेतना के विभिन्न आयामों पर हिंदी के 16 समालोचकों ने आलेख लिखे हैं, जिससे अटल जी का काव्य- व्यक्तित्व अपने सही अर्थों में उद्घाटित होता है। इस पुस्तक के संपादक एवं चर्चित समीक्षक डॉ. अरुण कुमार भगत ने स्वयं अपने आलेख में अटल जी की आपातकालीन कविताओं का सुंदर और सटीक विश्लेषण किया है।

समीक्षाशास्त्र के अधीती युवा लेखक डॉ. अरुण कुमार भगत के बहुविध रचना-कार्य से हिंदी का सारस्वत जगत् ततोऽधिक समृद्ध हुआ है। इनकी रचनाओं में प्राचीन और नवीन साहित्यिक तत्त्वों का

मनोरम संगम सहज ही सुलभ हुआ है। डॉ. भगत की रचनाओं में साहित्यिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना का त्रिवेणी संगम भी अपने शुद्ध सात्त्विक भावों से तरंगित है। डॉ. भगत मौलिक लेखन के धनी हैं, परंतु संपादित पुस्तकों की संख्या भी स्वल्प नहीं है। कहना न होगा, भगत जी ने अपनी रचनाओं से साहित्यिक क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान उपन्यस्त की है।

इस पुस्तक के माध्यम से मान्यश्री अटल बिहारी वाजपेयी की काव्य-चेतना का समग्र रूप उपस्थापित हुआ है। विकसित कला-वैभव से समन्वित अटल जी एक सफल राजनेता के साथ-साथ सच्चे अर्थ में मनीषी कवि भी हैं। उनमें कवित्व तो है ही, कवित्व शक्ति भी है। साहित्य-शास्त्र की दृष्टि से उनकी काव्य-भाषा रसात्मक है, साथ ही रमणीय अर्थ के प्रतिपादक हैं उनके शब्द। भाषिक शिल्प की दृष्टि से उनकी कविताओं में अध्ययन के अनेक तत्त्व निहित हैं।

डॉ. अरुण कुमार भगत द्वारा संपादित इस पुस्तक के माध्यम से अटल जी की कविताओं का भाषिक शिल्प भी रेखांकित हुआ है। भाषिक शिल्प का सीधा संबंध भाषिक कला से है। इस दृष्टि से कविवर अटल जी की काव्य-भाषा में प्रयोग वैविध्य तो है ही, प्रयोग-वैचित्र्य भी है। कला-तत्त्व की वरेण्यता के कारण अटल जी की कविताओं का साहित्यिक सौंदर्य अपना विशिष्ट मूल्य आयत्त करता है। यह पुस्तक इस तथ्य को रेखांकित करने में पूरी तरह समर्थ है कि अटल जी ने अपनी काव्य भाषा में भावों का गहनतम विनियोग किस तरह किया है। अटल जी की रचना शैली की अपनी निजता को भी इस पुस्तक में कुशलता के साथ चित्रित किया गया है।

इस पुस्तक के माध्यम से अटल जी की कविताओं में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, मानवीय मूल्य, अध्यात्म चेतना, सांस्कृतिक चेतना, व्यंग्य संधान, राष्ट्रीय चेतना, वेदनावाद, संवेदना-तत्त्व, आत्म संघर्ष, अतीत गौरव इत्यादि को विस्तारपूर्वक रेखांकित किया गया है। मान्यश्री अटल जी की कविताएँ न केवल काव्यशास्त्र अपितु सौंदर्यशास्त्र की दृष्टि से भी अध्येतव्य हैं। काव्य-सौंदर्य के विधायक मूल तत्त्वों में पदशय्या की चारुता, अभिव्यक्ति की वक्रता, वयोभंगी का चमत्कार, भावों की गहनता, रमणीय कल्पना, हृदयावर्जक बिंब इत्यादि प्रमुख हैं। इस पुस्तक में डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय', डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद, डॉ. देवेंद्र दीपक, आचार्य निशांतकेतु, डॉ. अमरनाथ सिन्हा, डॉ. नंदलाल मेहता वगीश, बल्देव भाई शर्मा इत्यादि के श्रेष्ठ आलेख हैं, जो उच्च कोटि की समालोचना की श्रेणी में पांक्तेय हैं।

कवित्व की महिमा से मंडित सहृदय अटल जी जैसे विद्वान् कवि इसमें मुखर दिखाई देते हैं, जिन्होंने राष्ट्रीयता-संवलित मानव-मन की आभ्यंतर चेतना या अध्यात्म भावना का प्रभावकारी चित्रण ललित कविता के माध्यम से किया है। इसलिए अटल जी जैसे कवि श्रेष्ठ का काव्य-समग्र मानव-संस्कृति का अतिशय उदात्त और अद्वितीय तथा काव्य-जगत् के अध्ययन के क्षेत्र में सर्वथा नवीन निक्षेप के रूप में लोकसमादरणीय है, जिसका जीवंत चित्रण इस पुस्तक में किया गया है।

---

# मैं दीनदयाल उपाध्याय बोल रहा हूँ

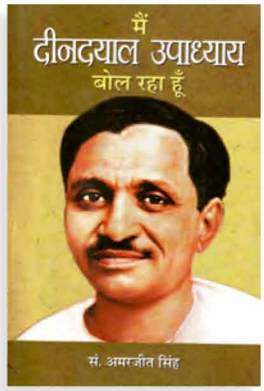


समीक्षक : **दीपक मंजुल**

**मैं दीनदयाल उपाध्याय बोल रहा हूँ**

संपा. : **अमरजीत सिंह**

प्रतिभा प्रतिष्ठान

नई दिल्ली

पृ. 192; रु. 250

पं. दीनदयाल उपाध्याय बहुमुखी प्रतिभा के धनी एक ऐसे व्यक्तित्व थे जो अपने समय और समाज के लिए जितने उपयोगी और अपरिहार्य थे उससे अधिक परवर्ती समय, समाज और राष्ट्र के लिए। पं. उपाध्याय एक साथ एक कुशल राजनीतिज्ञ, संगठनकर्ता, प्रखर पत्रकार और मूर्धन्य साहित्यकार तो थे ही, प्रखर राष्ट्रवादी और देशभक्त, भारतीय वादी एवं भारतीय संस्कृति के अनन्य पोषक भी थे। परिवार के ऊपर समाज और राष्ट्र के हितों के प्रबल आकांक्षी पं. उपाध्याय एक उत्साही समाजसेवी भी थे। और सर्वोपरि, वह एक गंभीर विचारक थे। प्रस्तुत पुस्तक उनके जीवन और कर्म पर कम, उनके विचारों पर अधिक फोकस करती है। अनेक दुर्लभ छायाचित्रों से युक्त यह पुस्तक वस्तुतः पं. दीनदयाल के विचारों का एक संग्रहणीय संचयन है। इस पुस्तक के पारायण से हमें विचारक और वस्तुतः दार्शनिक पं. दीनदयाल उपाध्याय के तत्कालीन समय, समाज, राजनीति, कूटनीति, अर्थनीति, विश्वनीति, राष्ट्र, भाषा, धर्म आदि विविध विषयों एवं क्षेत्रों पर गंभीर एवं सारगर्भित विचारों को देखने-पढ़ने का अवसर मिलता है। पंडित जी के विचारों के अनुशीलन से हमें पता लगता है कि उनकी विचार-दृष्टि का क्षितिज एवं फलक कितना विस्तृत और व्यापक था। विचारहीनता के वर्तमान दौर में पं. उपाध्याय के विचारों का पारायण और अनुशीलन आवश्यक ही नहीं, अपरिहार्य भी लगता है, और इससे भी अधिक इन विचारों का पथिक और अनुगामी बनना। वस्तुतः विचार केवल पठन की नहीं, पालना की माँग करता है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय को जो लोग 'पांचजन्य' पत्रिका के जन्मदाता और पालनकर्ता, राष्ट्रधर्म प्रकाशन के संस्थापक और संचालक, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आजीवन व्रती प्रचारक और 'जनसंघ' के संस्थापक के रूप में ही जानते-मानते आए हैं, इस पुस्तक को पढ़कर उनका भी विचार और मत परिवर्तन हो जाना सहज संभाव्य लगता है। अपने बाल्यकाल में ही पिता और माता, दोनों को खो देने वाले इस अनाथ बालक को अपने मामा के घर आश्रय मिला था और प्रारंभिक से लेकर उच्चतर शिक्षा-दीक्षा प्राप्त हुई थी। जन्म-स्थान मथुरा था पर शिक्षा के केंद्र समय-समय पर बदलते रहे। दसवीं और इंटर की परीक्षा न केवल प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की बल्कि स्वर्ण पदक के साथ उत्तीर्ण की। कानपुर, आगरा और प्रयाग में क्रमशः बी.ए., एम.ए. एवं बी.टी. में प्रवेश लिया। सन् 1942 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक बनने के बाद से लेकर 1967 में भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष बनने तक के अपने लंबे सफर में पं. उपाध्याय लोकसभा के सदस्य भी बने। अपना संपूर्ण जीवन ही समाज और राष्ट्र के लिए त्याग एवं तपस्या में समर्पित कर देने वाला महापुरुष या कहें कि युगपुरुष आजीवन व्रती बना रहा। स्वाधीनता-पूर्व प्रशासनिक सेवा की प्रतियोगिता में चयनित होकर भी उन्होंने सिर्फ इस वजह से नौकरी नहीं की थी क्योंकि उन्हें एक विदेशी सरकार के अधीन काम करना पड़ता। ऐसे प्रखर राष्ट्रभक्त, चिंतक और विचारक के विचारों का यह संग्रह पठनीय ही नहीं, मननीय भी है।

पं. दीनदयाल के कुछ विचारों को देखना-पढ़ना यहाँ आवश्यक प्रतीत हो रहा है। आज जबकि कुछ देशद्रोही तत्त्व देशद्रोह को ही 'राष्ट्रप्रेम' और 'देशभक्ति' का नाम देकर 'राष्ट्र' की अवधारणा की गलत व्याख्या करने पर तुले हैं, ऐसे में पं. दीनदयाल के राष्ट्र की अवधारणा पर विचार करना आवश्यक लगता है। राष्ट्र को एक 'जीवमान इकाई' कहने वाले पंडित जी कहते हैं—"जिस प्रकार व्यक्ति के लिए शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा जरूरी है, इन चारों को मिलाकर व्यक्ति बनता है, उसी प्रकार देश, संकल्प, धर्म और आदर्श के समुच्चय से राष्ट्र बनता है।" देश और राष्ट्र के बीच भी वे एक सूक्ष्म अंतर देखते हैं— "जिस प्रकार देश एक दृश्यमान सत्ता है, उसी प्रकार राष्ट्र एक अदृश्यमान सत्ता है। देश दिखाई पड़ता है, राष्ट्र दिखाई नहीं पड़ता।" आज की गंदी और गर्हित राजनीति पर पं. दीनदयाल का यह विचार एक हथौड़े की तरह है—"व्यक्तिगत, दलगत या वादगत कोई विचार लेकर चलने से प्रगति नहीं हो सकती। राजनीति आखिर राष्ट्र के लिए ही है।" मजबूत राष्ट्र का मंत्र वे यों देते हैं—"प्रत्येक व्यक्ति 'मैं' और 'मेरा' विचार त्यागकर 'हम' और 'हमारा' का विचार करे।" राष्ट्र के लिए काम करने को वे 'धर्म' कहते थे। 'भारतमाता' शब्द को लेकर हाल के दिनों में देश में जो वितंडा खड़ा हुआ था उसके संदर्भ में पंडित उपाध्याय का यह विचार कितना मौजूँ है—"हमारी राष्ट्रीयता का आधार 'भारतमाता' है, केवल भारत नहीं। 'माता' शब्द हटा दीजिए तो भारत केवल जमीन का एक टुकड़ा मात्र रह जाएगा। इस भूमि का और हमारा ममत्व तब आता है, जब माता वाला संबंध जुड़ता है।"

'धर्म' की दलगत या पंथगत व्याख्या से इतर पं. उपाध्याय का धर्म बेहद उदार और व्यापक है। वे कहते हैं—"धर्म तो व्यापक है... जिस प्रकार विद्यालय विद्या नहीं है वैसे ही मंदिर धर्म से भिन्न है... रिलीजन यानी मत, पंथ, मजहब, वह धर्म नहीं। धर्म तो एक व्यापक चीज, जीवन के सभी पहलुओं से संबंध रखने वाली चीज है—उससे समाज की धारणा होती है। उससे आगे बढ़ें तो सृष्टि की धारणा होती है। यह धारणा करने वाली जो चीज है, वह धर्म है।" विश्व की समस्याओं का हल वे समाजवाद में नहीं, हिंदुत्ववाद में देखते थे। हिंदुत्ववाद का मतलब वे मानवतावाद बताते थे।

पं. दीनदयाल की अपनी सोच थी, अपना दृष्टिकोण था। वे समय, समाज और राष्ट्र की किसी भी घटना या गतिविधि से असंपृक्त या निरपेक्ष नहीं थे और हर घटना से स्वयं को परिचित रखते थे। उनका चीजों के प्रति नजरिया अलग होता था। उनकी सोच प्रगतिशील थी। आज का बेहद चर्चित (और विवादास्पद भी) शब्द 'सेक्युलर' का निकटतम भाषांतर वे 'असांप्रदायिक' करते थे। 'राजनीति' को लेकर उनकी सोच थी कि "राजनीति के लिए राष्ट्रीयता नहीं, राष्ट्रीयता के पोषण के लिए राजनीति होनी चाहिए। वह राजनीति जो राष्ट्र को क्षीण करे, अवांछनीय है।" भ्रष्टाचार के प्रति वे किस हद तक असहिष्णु थे, इसका पता उनके इस वक्तव्य से चलता है—"यदि जनसंघ भ्रष्ट होती है तो मैं इस संगठन को स्वयं अपने हाथों से समाप्त कर दूँगा एवं नए संगठन का निर्माण करूँगा।"

सामान्य भारतीय सोच के अनुरूप पं. दीनदयाल भी कश्मीर को भारत का अविभाज्य अंग कहते थे जिसको लेकर कोई समझौता नहीं हो सकता। कश्मीर को लेकर चल रही अटकलबाजियों व गलतफहमियों के दृष्टिगत वे धारा 370 को समाप्त कर देने के पक्षधर थे। पं. उपाध्याय कहा करते थे—"हमें चाहिए कि मुसलमानों में राष्ट्रीय भावना को बढ़ाएँ। उनके साथ मैत्री करें।" शिक्षा, स्वाध्याय, स्वभाषा सब पर उनके अपने विचार थे।

व्यक्ति की स्वतंत्रता उनके लिए सर्वप्रथम चीज थी। "स्वतंत्रता मानव और राष्ट्र की स्वाभाविक आकांक्षा है।... राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता भी चाहिए।" लोकतंत्र के बारे में उनका कथन था—"किसी भी एक क्षेत्र में लोकतंत्र का अभाव दूसरे क्षेत्र में लोकतंत्र को नहीं पनपने देगा।" सच्चे प्रजातंत्र का आधार वे 'आर्थिक विकेंद्रीकरण' में देखते थे। वे आर्थिक योजनाओं और प्रगति का माप ऊपरी पायदान के व्यक्ति नहीं बल्कि सीमांत के व्यक्ति से आँकते थे।

इस पुस्तक में पं. दीनदयाल के विषयवार विचार के अलावा उनके कुछ प्रेरक पत्रों को सम्मिलित किया गया है। मित्रों की स्मृति में पं. दीनदयाल की विदेश यात्रा, उनके लेख तथा अप्राप्य भाषण भी पुस्तक को व्यापक आयाम प्रदान करते हैं। पं. उपाध्याय के विविध आयामी व्यक्तित्व ने उनके कद को बहुत ऊँचा कर दिया था। यह अनायास नहीं था कि उनके निधनोपरांत बड़े-बड़ों ने उन्हें 'अप्रतिम विभूति', 'भारत माँ के महान सपूत', 'युगपुरुष', 'महान देशभक्त', 'राष्ट्रीयतावादी' और 'कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति' जैसे विशेषणों से विभूषित किया।

पं. दीनदयाल का निधन हुए 48 साल होने को आए किंतु अपने विचारों में वे आज भी जीवित हैं और हमें मार्गदर्शन प्रदान करते रहेंगे।

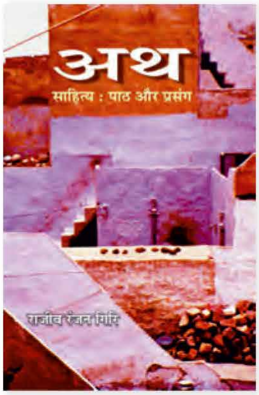


समीक्षक : **धर्मेन्द्र सुशान्त**

**अथ साहित्य : पाठ और प्रसंग**

**राजीव रंजन गिरि**

अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली-110032

संपर्क : 9873302543

मूल्य : रु. 750/-

## युवा आलोचक की प्रतिश्रुति

युवा आलोचक राजीव रंजन गिरि की पुस्तक 'अथ' हिंदी साहित्य के पाठ और विश्लेषण का एक नवीन प्रयास है। बेशक यह आलोचना औपचारिकता का निर्वाह करते हुए नहीं की गई है। लेकिन अलग-अलग अवसर पर और कुछेक पत्र-पत्रिकाओं के लिखे गए आलेखों-समीक्षाओं और टिप्पणियों को मिलाकर बनी यह पुस्तक अनौपचारिक होते हुए भी अनियोजित नहीं है। वाद-विवाद संवाद की पूर्व परम्परा के अनुकूल यह पुस्तक मध्यकालीन भक्ति-आंदोलन से लेकर समकालीन हिंदी साहित्य पर विश्लेषणपरक नजर डालती है। उन्होंने लेखक संगठनों और साहित्यिक विमर्शों को प्रत्यक्ष सामाजिक परिप्रेक्ष्य में रखकर देखने की कोशिश कई आलेखों में की है, जिसके फलस्वरूप इस पुस्तक में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर संकट से लेकर हिंदी में आर्थिक चिंतन जैसे मुद्दे भी शामिल हो सके हैं।

वस्तुतः राजीव साहित्य को उसके सामाजिक परिप्रेक्ष्य से अलग कर देखने वालों में से नहीं हैं। यही वजह है कि अपनी आलोचना मुख्यतः साहित्यिक होते हुए भी अन्य अनुशासनों से भी मदद लेते हैं। भक्ति आंदोलन के संदर्भ में लिखते हुए उन्होंने विभिन्न इतिहासकारों के लेखन का जिक्र किया है।

पुस्तक के दूसरे लेख में राजीव ने भगवान सिंह की पुस्तक 'आधुनिकता और तुलसीदास' पर विचार करने के बहाने आलोचना में अतिवाद और अंधश्रद्धा के खतरे को उजागर किया है। उनका आग्रह है कि आलोचक किसी लेखक के मूल्यांकन में यदि उसकी समग्रता का ध्यान नहीं रखता तब यह मूल्यांकन विश्वसनीय नहीं हो सकता। इसी आधार पर उन्होंने दिखलाया है कि भगवान सिंह का तुलसीदास के प्रति दृष्टिकोण उनके आलोचनात्मक विवेक से अधिक उनकी अंधश्रद्धा को दर्शाता है। आगे एक आलेख में राजीव पुरुषोत्तम अग्रवाल की पुस्तक 'कबीर : साखी और सबद' की विवेचना करते हुए बताते हैं कि अग्रवाल ने अन्य कई लोगों की तरह अपनी सुविधा और सोच के मुताबिक कबीर की परेशान करने वाली कविताओं को हटाया नहीं है। 'अथ' का अगला खंड आधुनिक हिंदी साहित्य से संबंधित है। इसकी शुरुआत 'आरंभिक आधुनिकता की तलाश' शीर्षक लेख से होती है। इसमें राजीव बेहद महत्त्वपूर्ण सवाल उठाते हैं कि क्या आधुनिकता देशकाल निरपेक्ष होती है या स्थान विशेष के परिप्रेक्ष्य में इसकी शिनाख्त संभव है? भारतीय संदर्भ में आधुनिकता को पश्चिम से मिली चीज मानने का भ्रम रहा है।

राजीव 'नवजागरण' के संदर्भ में आर्य समाज की चर्चा करते हुए वीर भारत तलवार की किताब 'हिंदू नवजागरण की विचारधारा : सत्यार्थ प्रकाश-समालोचना एक प्रयास' के माध्यम से बताते हैं कि दयानंद अपने धर्म की कुरीतियों का विरोध और वेद के आधार पर एक 'नए धर्म' को गढ़ने की कोशिश कर रहे थे। साथ ही यूरोपीय नेशन स्टेट (राष्ट्र राज्य) के अनुरूप भारतीय 'राष्ट्र' को बदलने की कोशिश कर रहे थे।

पुस्तक में एक विशेष महत्त्वपूर्ण लेख है— 'सांप्रदायिकता, सत्ता और साहित्य'। भारतीय संदर्भ में इस सवाल से जिरह है कि क्या सांप्रदायिकता के लिए धर्म-मात्र जिम्मेदार है या इसके और भी कारण हैं? वे सांप्रदायिकता को अंग्रेजों की देन मानने और एक समुदाय की सांप्रदायिकता की प्रतिक्रिया में दूसरे समुदाय में इस समस्या के पैदा होने की धारणा पर भी विचार करते हैं। 'अथ' में जिस एक मात्र विदेशी कवि की चर्चा हुई है, वह है अलेक्सांद्र पुश्किन। पुश्किन की प्रेम कविताओं के एक संकलन की समीक्षा (हिंदी में अनूदित) के संदर्भ में राजीव बतलाते हैं कि पुश्किन की कविताओं का मूल स्वर स्वतंत्रता और प्रेम है।

पुस्तक के अगले दो हिस्सों में राजीव ने कई पुस्तकों-पत्रिकाओं की विवेचना की है जिनमें 'आलोचना' का हजारीप्रसाद द्विवेदी विशेषांक, 'प्रसंग' का विस्मृत आलोचक नागेश्वर लाल पर विशेष अंक, 'लमही' का कहानी विशेषांक, 'संबोधन' का समकालीन बेबी हाल्दार की आलो आंधारि युवा कविता अंक आदि। पुस्तक के अंतिम दो हिस्सों में राजीव ने हिंदी भाषा से जुड़े मुद्दों पर लिखा है। इनमें स्कूली पाठ्यपुस्तक में शामिल हिंदी साहित्य, हिंदी भाषा की लिपि का सवाल, हिंदी दिवस की अवधारणा और प्रासंगिकता आदि शामिल है।

## एक इंच सुकून

**डॉ. रमेश सोबती**

अंग्रेजी अनुवाद :

**डॉ. उमा त्रिलोक**

मूल हिंदी में लिखी गई कविताओं का सामने वाले पृष्ठ पर ही अंग्रेजी अनुवाद। पुस्तक का लेआउट बेहद आकर्षक है।

सम्या प्रकाशन

मायापुरी, नई दिल्ली 110064

पृ. 176, रु. 600.00

## व्यथा

**रामकरण आर्य**

मन में उमड़ते-घुमड़ते हजारों सवालों, व्यथाओं की काव्यात्मक अनुभूति।

अनुभव प्रकाशन

लाजपत नगर, साहिबाबाद, गाजियाबाद (उ.प्र.) 201005

पृ. 110, रु. 160.00

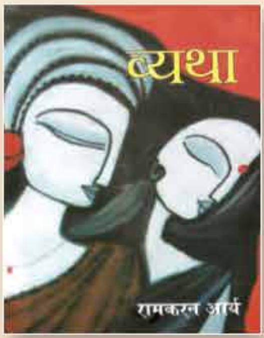


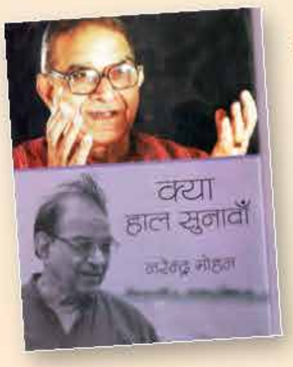


## क्या हाल सुनावाँ

**नरेन्द्र मोहन**

प्रख्यात कवि, नाटककार, आलोचक की आत्मकथा।

किताबघर प्रकाशन

दरियागंज, नई दिल्ली 110002

पृ. 216, रु. 390.00

## डेमोक्रेसी का चौथा खंभा

**संजीव जायसवाल 'संजय'**

समाज में व्याप्त विद्रूपताओं और विसंगतियों पर चोट करते 80 व्यंग्यों का संकलन।

ग्रंथ अकादमी

पुराना दरियागंज, नई दिल्ली 110002

पृ. 168, रु. 200.00

## कुमाऊँ की बारदोली : सल्ट

**देवेन्द्र उपाध्याय**

उत्तराखंड के सल्ट क्षेत्र का आजादी की लड़ाई में बड़ा योगदान रहा है। महात्मा गाँधी ने इसे 'कुमाऊँ की बारदोली' कहा था। यह पुस्तक वहाँ के जन आंदोलन का लेखा-जोखा है।

उत्तरा बुक्स

केशवपुरम, दिल्ली-110035

पृ. 96 रु. 100.00

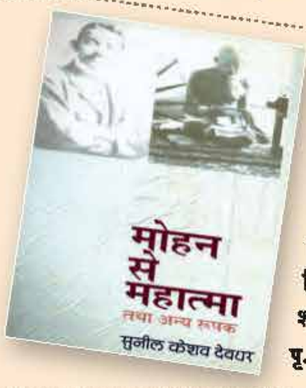


## मोहन से महात्मा

**सुनील केशव देवधर**

आकाशवाणी की चिर-परिचित आवाज द्वारा लिखे गए कुछ रूपकों का संकलन। हिंदी में इस विधा पर बहुत कम पुस्तकें हैं।

शिल्पायन

शाहदरा, दिल्ली-110032

पृ. 112, रु. 120.00

## एल्गा-गोरस

**कुमार पंकज**

यह विज्ञान गल्प नहीं है, लेकिन विज्ञान के मूल सिद्धांतों और संभावनाओं के साथ खिलवाड़ भी नहीं। हिंदी में ऐसे मिथकीय, रहस्य बहुत कम लिखे गए हैं।

क्विल्स इंक पब्लिकेशंस

दरियागंज, नई दिल्ली-110002

पृ. 578, रु. 350.00

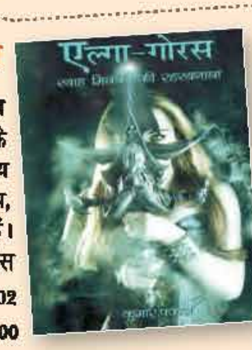

# बच्चों की पुस्तकों के चित्रों के जादूगर : जगदीश जोशी

एक अंग्रेज विद्वान् ने कहा है कि, 'व्हेन हार्ट इज फुल, वड्र्ज आर स्केयर्स' अर्थात् जब दिल भरा होता है तो तब शब्द नहीं मिलते। बच्चों के लिए कहानियों को अपने रंग और रेखाओं से जीवंत बनाने वाले श्री जगदीश जोशी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए मुझे वैसा ही लग रहा है। बात सन् 2000 की है। मैं उन दिनों चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट में काम कर रही थी और बच्चों की किताबों पर जोशी जी के बनाए चित्रों का जादू देखती थी। बाल पुस्तकों की सफलता बहुत कुछ उसके चित्रों पर निर्भर करती है क्योंकि आकर्षक चित्रों से सजी पुस्तकें बच्चों का ध्यान फौरन अपनी ओर खींचती हैं और जोशी जी के बनाए चित्र शब्द और ध्वनि बनकर उभरते थे। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के लिए तो उन्होंने कई पुस्तकों को लिखा व खुद चित्र भी बनाए, जिनमें प्रमुख हैं– खोजो पहचानो, फूफू, पहेली आदि।

जोशी जी बहुत कम बोलते थे और बेहद संकोची प्रवृत्ति के थे। खुद के बारे में तो बहुत ही कम बोलते या बताते। संयोग से एक बार उनका मेरे घर आना हुआ और तब मैंने उनकी जीवन यात्रा के बारे में जाना। जोशी जी का जन्म एक जुलाई 1937 को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में हुआ था। उनके पिता वहाँ के गीता प्रेस में काम करते थे। वहाँ से प्रकाशित धार्मिक पत्रिका 'कल्याण' में पौराणिक कथाओं पर आधारित चित्र बने होते हैं। बचपन में जोशी जी को वे चित्र बहुत आकर्षित करते। उन्होंने तय किया कि जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स में जाएँगे और पेंटिंग को अपना कैरियर बनाएँगे। पर एक पारिवारिक मित्र श्री बी.के. मित्रा के मना करने पर वे कोलकाता चले गए। जहाँ उन्होंने विज्ञान के विषय को लेकर

## कुसुमलता सिंह

50 से अधिक पुस्तकों की लेखिका, 'ककसाड़' मासिक और 'परिंदे' त्रैमासिक पत्रिका की संपादक।

वरिष्ठ बाल साहित्यकार, स्वतंत्र लेखन, संपादन।

लंबे समय तक चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट के संपादकीय विभाग में बतौर सलाहकार संबद्ध।

**संपर्क :**

kusumratsarballia@gmail.com

इंटरमीडिएट में दाखिला ले लिया और तय किया कि इंजीनियर बनेंगे। पर आर्थिक स्थिति ठीक न होने से वे कोई कमरा किराए पर न ले पाए और रिश्तेदारी में रहने लग गए, पर बात न बनी। सब छोड़कर उन्होंने गोरखपुर लौटने का मन बना लिया। संयोग से वहीं सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन के ट्रस्टी श्री महाबीर प्रसाद पोद्दार से मुलाकात हुई और उन्होंने श्री जोशी को एक परिचय पत्र दिया। उसे लेकर वे दिल्ली आए और श्री मार्तंड उपाध्याय से मिले, जो सस्ता साहित्य मंडल के सचिव थे। उन्होंने जोशी जी की रुचि चित्रकारी में देखकर पुस्तकों के चित्र बनाने का काम दे दिया। उन दिनों अपने क्षेत्र के सांसद ने उन्हें अपने घर में रहने को स्थान दे दिया और यहीं से उनकी चित्रों के संसार के साथ यात्रा चल पड़ी। बाद में उन्होंने 'कादंबिनी' हिंदुस्तान टाइम्स में काम किया, फिर थॉम्पसन प्रेस में काम करने लगे। वहीं उन्होंने कॉमिक्स की विषय-वस्तु पर चित्र बनाए। जोशी जी की पहली बच्चों की किताब, जिस पर उन्होंने चित्रांकन किया, वह थी 'मोतीलाल, द प्राउड मैन ऑफ तीमारपुर'।

सन् 1972 में उन्होंने चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट, दिल्ली में कार्यारंभ किया और तब से पीछे मुड़कर नहीं देखा। विभिन्न विषयों की पुस्तकों पर, चाहे वह पौराणिक हों, जानवरों की कहानियाँ हों या कोई और विषय हो, सभी उनके चित्रों की दीप्ति और सजीलेपन से जीवंत हो उठती थीं। उन्हें अनेक पुरस्कार मिले। यह पूछने पर कि आप अपने चित्रों में इतनी विविधता कैसे लाते हैं? वे बोले, "देखिए, बच्चों की किताबों पर चित्र उसकी कथा वस्तु पर यह सोचकर बनाते हैं कि उसमें बच्चों को आनंद आए। इसलिए हर पुस्तक में कुछ नया प्रयोग करते हैं। वैसे मेरे विचार से लेखक और चित्रकार को आपस में विषय और चित्र पर चर्चा करनी चाहिए। बाहर के देशों में तो ऐसा होता है, पता नहीं कब हमारे यहाँ इस तरह की शुरुआत होगी। वैसे बाल-साहित्य से जुड़े रहकर ही मेरे अंदर के कलाकार को पूर्ण संतुष्टि मिलती है।"

इसमें कोई संशय नहीं कि भारतीय बाल-साहित्य को श्री जोशी के चित्रों की बहुमूल्य देन है। आत्म-विज्ञापन तथा आत्म-प्रशंसा से दूर रहकर बाल-साहित्य में चित्रों की अद्भुत भागीदारी करने वालों में उनका नाम अविस्मरणीय रहेगा। उनके रंग, कल्पनाशीलता और बाल-मनोविज्ञान की समझ कुशाग्र तथा विवेकपूर्ण थी। साथ ही व्यवहार कुशलता भी उनमें कम नहीं थी और उनकी मिलनसारी से कोई प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था।

उनकी स्मृति को स्नेहपूर्ण नमन!

## भारत कभी भी पराधीन नहीं रहा —बल्देव भाई शर्मा

"भारत एक साधन संपन्न और पराक्रमशील देश रहा है और कभी भी कोई भी शासक इसे पूरी तरह पराधीन नहीं कर पाया, क्योंकि समूचे देश में हर काल में कहीं ना कहीं स्वतंत्रता के स्वर व संग्राम चलते रहे हैं। जिन लोगों ने अपना जीवन, आकांक्षाएँ, लालसाओं की आहुति देकर इस देश को पूर्ण स्वतंत्रता दिलवाई तथा यहाँ लोकतंत्र स्थापित किया, उन वीरों की जानकारी यदि हम अपने बच्चों को नहीं दे पाए तो हमारे देश पर पराधीनता का खतरा मंडराता रहेगा।" यह उद्गार थे राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के अध्यक्ष बल्देव भाई शर्मा के। वे पिछले दिनों मेरठ में आयोजित दो पुस्तकों के विमोचन समारोह में अध्यक्षीय आसंदी से बोल रहे थे। इस आयोजन में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा प्रकाशित मेरठ के निवासी ए.के. गाँधी की पुस्तक '1857 : क्रांति व क्रांतिधरा', और श्री गाँधी द्वारा अनूदित 'कोमगता मरु' (मलविंदरजीत सिंह वराइच तथा गुरदेव सिंह सिद्धू) का लोकार्पण किया गया। आयोजन के मुख्य अतिथि श्री नरेंद्र कुमार तनेजा, कुलपति चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ और विशेष अतिथि श्री आर.के. भटनागर, पूर्व आइ.ए.एस. व डॉ. अमित पाठ्क, इतिहासकार थे।

प्रख्यात अधिवक्ता डॉ. नीलकमल शर्मा ने '1857 : क्रांति व क्रांतिधरा' पुस्तक पर अपनी समीक्षा में कथा वाचन शैली का मिश्रण कर श्रोताओं को भावविभोर कर दिया। उन्होंने बताया कि किस तरह जाति-धर्म के बंधन तोड़कर मेरठवासी इस क्रांति के लिए एक हो गए थे। उनका कहना है कि बगावत मेरठ की रग-रग में है। 'कोमगता मरु' पुस्तक पर समीक्षा प्रस्तुत करते हुए युवा छात्र मानुल रस्तोगी ने उल्लेख किया कि कनाडा के प्रधानमंत्री ने सौ साल पहले की इस घटना पर पिछले दिनों माफी माँगी है। यह दर्शाता है कि वह घटना भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास की कितनी महत्त्वपूर्ण कड़ी थी। इतिहासविद् डॉ. अमित पाठक ने कहा कि मेरठ में आज उन बंगलों में कई स्कूल चल रहे हैं जहाँ से 1857 की क्रांति की चिंगारी फूटी थी, लेकिन वहाँ पढ़ने वाले बच्चों की पुस्तकों में 1857 पर बामुश्किल एक पेज होगा व मेरठ की घटना पर एक पंक्ति। डॉ. पाठक का कहना था कि कम से कम इस क्षेत्र के बच्चों को वे स्थान व उससे जुड़ी घटनाओं की जानकारी हो और इसके लिए बहुत-सी पुस्तकों की आवश्यकता है। श्री गाँधी की पुस्तक इस दिशा में अहम पड़ाव है। श्री आर.के. भटनागर ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि इस पुस्तक की भाषा बेहद सरल है जो कि आम लोगों को समझ में आती है।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि प्रो. तनेजा ने कहा कि हमारे विद्यालयों में जो इतिहास अभी तक पढ़ाया गया, उसमें षड़यंत्र के तहत हमें कमतर बताया गया। जबकि हमारा इतिहास संघर्ष का है। उन्होंने कहा कि वे अंग्रेज राष्ट्रवाद की बात करते हैं जिन्होंने पूरी दुनिया में लोकतंत्र को समाप्त कर अधिनायकवाद को फैलाया। लेखक ए.के. गाँधी ने मेरठ शहर के अतीत पर प्रकाश डालते हुए बताया कि मेरठ में क्रांति शुरू होने के बाद भले ही सैनिक दिल्ली चले गए थे लेकिन यहाँ के आम लोगों ने अंग्रेजों को खदेड़ने का काम जारी रखा था। यह क्रांति इलाके के सांप्रदायिक सौहार्द की मिसाल रही है।

कार्यक्रम का संचालन राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के संपादक पंकज चतुर्वेदी ने किया।

# प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना

## आपका बैंक खाता - आपकी सुरक्षा का आधार

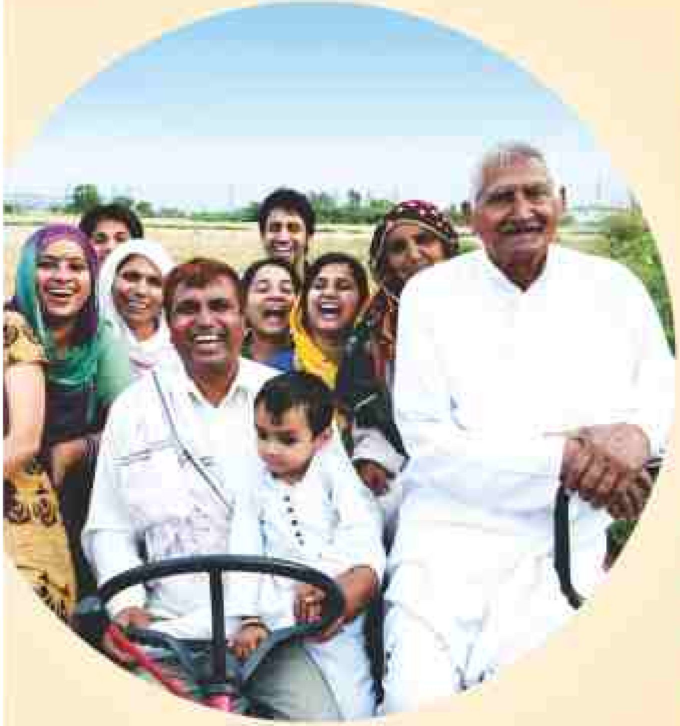

| लाभों की सारिणी | बीमा राशि |
|---|---|
| • मृत्यु | 2 लाख रुपए |
| • पूर्ण तथा दोबारा ठीक न हो सकने वाली दोनों आँखों की हानि या दोनों हाथों या पैरों के प्रयोग की हानि या एक आँख की रोशनी की हानि तथा हाथ या पैर के प्रयोग की हानि | 2 लाख रुपए |
| • पूर्ण तथा दोबारा ठीक न हो सकने वाली एक आँख की रोशनी की हानि या एक हाथ/ एक पैर के प्रयोग की हानि | 1 लाख रुपए |

- ✓ सभी बैंक के बचत खाता धारकों के लिए
- ✓ प्रति व्यक्ति प्रीमियम ₹12/-
- ✓ 18 से 70 वर्ष की आयु के लिए
- ✓ दुर्घटना के कारण विकलांगता या मृत्यु होने पर ₹2 लाख तक की बीमा सुरक्षा

## योजना 1 जून 2016 से पुनः लागु है।

कृपया अपने बैंक से सम्पर्क करें।

जनहित में जारी

**ओरिएण्टल इंश्योरेंस**
(भारत सरकार का उपक्रम)
पृथ्वी, अग्नि, जल, आकाश। सबकी सुरक्षा हमारे पास।

**Oriental insurance**
(Govt of India Undertaking)
Prithvi, Agni, Jal, Aakash. Sab ki suraksha hamare paas.

पंजीकृत कार्यालय: ''ओरिएण्टल हाउस'', ए-25/27, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110 002

वेबसाइट: www.orientalinsurance.org.in, टोल फ्री नं. 1800 118 485

# पुस्तक संस्कृति

**साहित्य और संस्कृति की त्रैमासिकी**

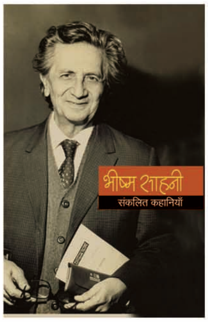


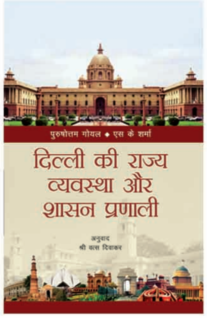


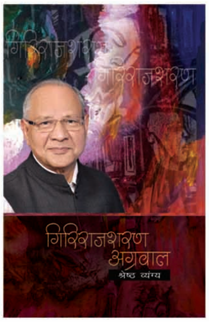


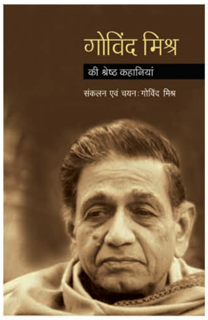


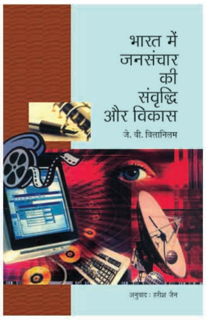


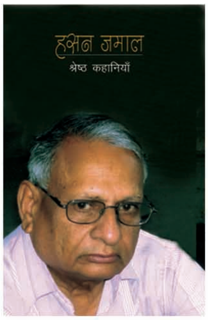


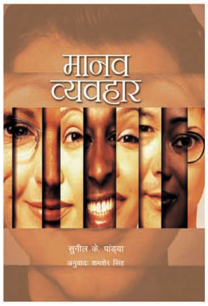


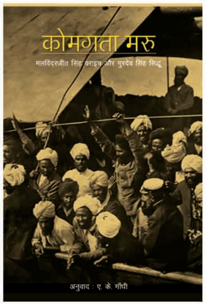


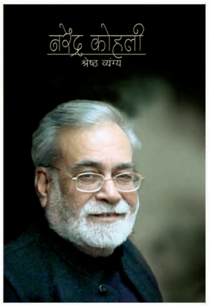


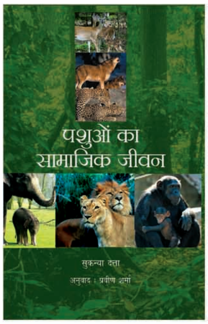


राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के अधीन एक स्वायत्त संस्था है, जोकि पाँच दशकों से अधिक समय से पुस्तक प्रकाशन व ज्ञान के प्रसार के क्षेत्र में सक्रिय है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा अभी तक 32 भाषाओं में 17,000 से अधिक पुस्तकों का प्रकाशन किया जा चुका है, जिसमें मूल, पुनर्मुद्रण तथा अन्य भारतीय भाषाओं व अँग्रेज़ी में अनुवाद शामिल हैं। न्यास विदेशों में भारतीय पुस्तकों के प्रोन्नयन और भारत में पुस्तक संस्कृति के प्रसार के लिए केंद्रीय अभिकरण के रूप में भी कार्य करता है।

आपको यह जानकर हर्ष होगा कि राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा एक साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका 'पुस्तक संस्कृति' का आरंभ किया गया है। पत्रिका का प्रवेशांक जनवरी-मार्च में आ चुका है। पत्रिका का दूसरा अंक अप्रैल-जून 2016 शीघ्र प्रकाश्य है। इस पत्रिका में आपको उत्कृष्ट रचनाओं यथा : कहानी, कविता, व्यंग्य, साहित्यिक व सामयिक विषयों पर लेख, यात्रा वृत्तांत, पुस्तक समीक्षा व पुस्तक प्रोन्नयन गतिविधियाँ आदि पढ़ने को मिलेंगी। पत्रिका लाखों पाठकों तक पहुँचेगी। 64 पृष्ठों की इस आकर्षक, पठनीय व बहुरंगी पत्रिका के लिए आपसे विज्ञापन आमंत्रित किए जाते हैं। पत्रिका में दिए जाने वाले विज्ञापनों की दर निम्न प्रकार रहेगी :

| | |
|---|---|
| दूसरा कवर पेज (रंगीन) | 10,000 |
| तीसरा कवर पेज (रंगीन) | 8,000 |
| चौथा कवर पेज (रंगीन) | 20,000 |
| अंदर का पूरा पृष्ठ (रंगीन) | 5,000 |
| आधा पृष्ठ (रंगीन) | 3,000 |

(उपर्युक्त दरों में किसी प्रकार की छूट दिए जाने का प्रावधान नहीं है।)

पत्रिका का आकार - 19.7 X 27.4 सेमी

प्रिंट एरिया - 17 X 23 सेमी (पूरा पृष्ठ)
17 X 11 सेमी (आधा पृष्ठ)

**भुगतान की विधि**

- कृपया एनईएफटी के जरिए बैंक ट्रांसफर के माध्यम से भुगतान करें। बैंक विवरण निम्न प्रकार है :

बैंक का नाम : केनरा बैंक

खाता संख्या : 3159101000299

आईएफएससी कोड (IFSC): CNRB0003159

एमआईसीआर कोड (MICR): 110015187

- 'नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया' के नाम डिमांड ड्राफ्ट भी भेज सकते हैं।

- एनबीटी के नाम किये गए भुगतान के दस्तावेजी प्रमाण, एनबीटी कार्यालय को भेज दिये जाएँ।

**विज्ञापन के लिए संपर्क करें :**

**कुमार समरेश**
उप-निदेशक (जनसंपर्क)
**राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत**
नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया
फेज-II, वसंत कुंज,
नई दिल्ली-110070 (भारत)
दूरभाष : 26707721/26707843

आप अपने विज्ञापन प्रारूप हमारे ई-मेल prnbtindia@gmail.com पर भी भेज सकते हैं।

nbt.india
एकः सूते सकलम्
**राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत**
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार